भगवान् महावीर के २५वे शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में

सचित्र

जैन कहानियां

लेखक की अन्य कृतियाँ

1 10	जन महानियां	प्रत्येक	2 50
11 25	जन महानिया	,	2 50
26	जनपद विहार		3 00
27	अव-स्मृति के प्रकार		1 00
28	एकाह्निक पञ्चशती		0-40
29	सत्यम शिवम्		1-00
30	जम्बू स्वामी री तूर		0-40
31	आत्म गीत		0 50
32	अचना		
33	साधना		

सम्पादित

1	श्री कालू यशो विलास	
2	श्री कालू उपदेश वाटिका	12 50
3	भरत मुक्ति	8 00
4	अग्नि-परीक्षा	6 50
5	आषाढ़ भूति	2 50
6	श्रद्धय के प्रति	2 25
7	मतिक सजीवन	2 00
8	आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन	25 00
9	आचार्यश्री तुलसी जीवन दर्शन	3 00
10	अहिंसा पर्यवेक्षण	3-00
11	अहिंसा विवेक	6 50
12	अणु से पूर्ण की ओर	0 75
13	अणुव्रत की ओर 1	2 00
14	अणुव्रत की ओर 2	2 00
15	आचार्यश्री तुलसी	2 00
16	अन्तर्ध्वनि	0-75
17	नया युग नया दर्शन	1 50
18	विश्व प्रहेलिका	15 00

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-६

सचित्र

जैन कहानियां

(भाग १२)

लेखक

मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

भूमिका

अणुव्रत-परामर्शक मुनिश्री नगराजजी डी० लिट्०

सम्पादक

श्री सोहनलाल बाफणा

1971

आत्माराम एण्ड सन्स

काश्मीरी गेट, दिल्ली-6

SACHITRA JAIN KAHANIYAN

PART 12

by

Muni hri Mahendra Kumarji Pratham

Rs 2 50

First Edition 1971

प्रकाशक
रामलाल पुरी सचालक
आत्माराम एण्ड सस
काश्मीरी गेट दिल्ली-6

शाखाएँ
हौज खास नई दिल्ली
चौड़ा रास्ता जयपुर
विश्वविद्यालय क्षेत्र, चण्डीगढ़
17 अशोक मार्ग, लखनऊ
काश्मीरी गेट दिल्ली

चित्रकार श्री व्यास कपूर

मूल्य दो रुपये पचास पैसे
प्रथम सस्करण, 1971

मुद्रक
रूपक प्रिण्टर्स
शाहदरा दिल्ली 32

प्राक्कथन

'वर्धमान देशना' एक विश्रुत ग्रन्थ है। इसमे भगवान् श्री महावीर की देशना (प्रवचन) का सकलन कथाओ के माध्यम से किया गया है। उपासकदशाग मे वर्णित दस प्रमुख श्रावको का जीवन इस ग्रन्थ का मुख्य आधार है। दशो श्रावक एक-एक कर भगवान् महावीर के उपपात में पहुचते हैं और देशना से प्रभावित होकर श्रावक के बारह व्रत स्वीकार करते है। सर्वप्रथम गृहपति आनन्द आता है। भगवान् महावीर उसे सम्यक्त्व का महत्त्व बताते है तथा उसके अनन्तर बारह व्रत। सभी के प्रतिपादन मे वहा रोचक कथाओ का आलम्बन लिया गया है। गृहपति आनन्द के श्रमणोपासक बनने के बाद काम-देव आदि भी श्रावक बनते है और उन्हे भी भगवान् महावीर धर्म के विभिन्न पहलुओं को कथाओ के द्वारा समझाते है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे तेंतीस कथाए है। आराम-शोभा जातक, रत्न-सार जातक तथा सारण, इन कथाओ को अलग कर छब्बीस कर दिया गया है। सभी कथाओ को तीन भागों मे विभक्त किया गया है। प्रस्तुत भाग मे ७ कथाएँ है। गृहपति आनन्द आदि की कथाओ को इन भागो मे सम्मिलित नही किया गया है। वे सब १८वे भाग मे दी गई है।

'वधमान देशना' की एक रचना प्राकृत में वि०स० १५५२ म शुभवधन गणि द्वारा की गई थी। आगे चलकर इसका मस्कृत म भी रूपान्तर हुआ।

जन कथाओं के आलेखन का क्रम विगत एक दशाब्दी से चला आ रहा है। अनचाहे ही यह लेखन का मुख्य विषय बन गया और क्रमश अनेकानेक कथाए मस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श तथा प्रान्तीय भाषाओं से रूपान्तरित होकर एक शृ खला में सम्बद्ध होने लगी। कथाओं का पठन तथा श्रवण सर्वाधिक प्रिय था ही, पर लेखन भी इनके साथ अनुस्यूत हो जाएगा यह कल्पना नही थी। किन्तु, अनायास हो गया और उससे मानसिक प्रसत्ति का एक सु दर स्रोत फूट पडा। इस बीच प्राचीन आचार्यों के अनेकानक कथा-सग्रह के ग्र थ भी देखे और उनसे कथाओं का चयन आरम्भ किया। सक्षिप्त व विस्तृत दोनों शैलियों में लिखे गये ग्र थों के स्वाध्याय से कथा-वस्तु की जानकारी में पर्याप्त योग मिला पर, उसकी विविधता ने उतनी ही जटिलता भी प्रस्तुत कर दी। एक ही कथा के अनेक रूप निर्णायकता में कठिनता उपस्थित कर रहे थे। अपनी मनीषा से ही किसी निष्कष पर पहुचकर आलेखन का प्रयत्न किया गया है। हो सकता है बहुत सारे स्थलों पर मत भिन्नता तथा परम्परा की भिन्नता भी हो, पर सवसम्मतता के अभाव म एक ही प्रकार की कथा का ग्रहण आवश्यक भी था। जहा तक स्वय की मान्यताओं का प्रश्न था बहुत सारे स्थलों पर उनका आग्रह न रखकर कथावस्तु को ज्यो-का-त्यो रखा गया है ताकि तत्कालीन परिस्थितियों

के बारे में पाठक अपना निर्णय स्वतः कर सकें। मैंने अपना निर्णय पाठकों पर थोपने का यत्न नहीं किया है। बहुत सारे स्थलों पर कथा-वस्तु में तनिक-सा परिवर्तन कर देने पर विशेष रोचकता भी हो सकती थी, किन्तु प्राचीन कथाओं की मौलिकता को बनाये रखने के लिए ऐसा भी नहीं किया गया।

जैन कथा-साहित्य जितना विस्तीर्ण है, उतना ही सरस भी है। आज तक वह आधुनिक भाषा में नहीं आया था; अतः वह अपरिचित भी रहा। मुझे यह अनुमान नहीं था कि पच्चीस भाग लिखे जाने के बाद भी उसकी थाह अज्ञात ही रहेगी। ऐसा लगता है जैन कथा-साहित्य के छोर को पाने में अनेक वर्षों की अनवरत तपस्या आवश्यक है। आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका आदि में कथाओं का विपुल भण्डार है। रास-साहित्य ने उसमें विशेषता और अभिवृद्धि की है। ज्यों-ज्यों गहराई में पहुंचा जाएगा, त्यों-त्यों विशिष्ट प्राप्ति भी होती जाएगी तथा और गहराई में घुसने के लिए उत्साह भी वृद्धिगत होता जाएगा।

पहुचना है। भगवान श्री महावीर के २५वें शताब्दी समारोह तक यदि यह काय सम्पन्न हो सका, तो विशेष आह्लाद का निमित्त होगा।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी के वरद आशीर्वाद ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवत्त किया और अणुव्रत परामशक मुनि-श्री नगराज जी डी० लिट्० के माग-दशन ने उसमे गतिशील किया। जीवन की ये दोनों ही अमूल्य थाती हैं। मुनि विनय-कुमार जी 'आलोक' तथा मुनि अभयकुमारजी का सतत साहचय लेखन में निमित्त रहा है।

१५ नवम्बर, ७० —मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'
दिल्ली

भूमिका

मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' द्वारा लिखित जैन कहानिया (भाग १ से १०) सन् १९६१ मे प्रकाशित हुई थी। भाग ११ से २५ अब सन् १९७१ मे प्रकाशित हो रहे है। समग्र जैन-कथा साहित्य को शताधिक भागो मे प्रस्तुत कर देने की लेखक की परियोजना है।

प्रथम १० भागों का प्रकाशन समग्र योजना के अकन का मानदण्ड बन गया। आत्माराम एण्ड सन्स जैसे विश्रुत-प्रकाशन सस्थान से एक साथ १० भागो के प्रकाशित होते ही जैन-जगत् और साहित्य-जगत् मे नवीन स्फुरणा सी आ गई। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारो ने माना—वैदिक कहानियाँ, पौराणिक कहानिया, बौद्ध कहानिया शृ खलाबद्ध होकर साहित्यिक क्षेत्र मे कब की आ चुकी है। जैन कहानियो का इस रूप मे अवतरण यह प्रथम वार हो रहा है, अत स्तुत्य है और एक दीर्घकालीन रिक्तता का पूरक है।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने कहा—"बहुत पहले जैन समाज के अग्रणी लोगो ने मुझे कहा—जैन कथाओ को भी आप अपनी शैली और अपनी भाषा दे। मैने कहा—जैन कथा-साहित्य मुझे मिले भी ? प्रस्तावक व्यक्तियो ने बडे-बडे ग्रन्थ मेरे सामने लाकर रख दिए। वे सब देखकर मैने कहा—ये विभिन्न भाषा और विभिन्न विषयो में आबद्ध ग्रथ मेरी अपेक्षा के पूरक कैसे हो सकेगे। इन ग्रथो में तो प्रकीर्ण कथा-साहित्य है। मै कब तक इनको पढ सकूँगा और कब तक कथा-सग्रह और कथा-चयन कर सकूँगा। तथा कब तक फिर उस कथा-सग्रह को अपनी भाषा और अपनी शैली दे सकूँगा। मुझे तो सग्रहीत व सुनियोजित कथा-साहित्य दे। मेरी इस माग

का समाधान उनके पास नहीं था, अत वह बात वहीं रह गई। जैन कहानियों के प्रस्तुत १० भाग ज्यों ही मेरे सामने आये अविलम्ब म पढ गया। जैन कथा साहित्य के प्रति मेरे मन मे गुरुत्व का मनोभाव भी बना। अब इन्हे मै या कोई भी साहित्यकार आसानी से अपनी भाषा दे सकता है। जैन कथा-साहित्य के विस्तार का अब यह समुचित धरातल बन गया है।"

श्री जैनेन्द्रकुमार जी से जब यह पूछा गया कि सर्व साधारण के लिए लिखी गई इन कथा पुस्तकों को आप और अनेका अन्य मूर्धन्य साहित्यकार रुचि व उत्साह से पढ गये यह क्यों ? उन्होंने बताया, 'साहित्यकार को अपने उपन्यास व अपनी कहानियो की कथा वस्तु भी तो दिमाग स गढनी पडती है। नवीन कथाओं का अध्ययन साहित्यकार के दिमाग को उर्वर बनाता है। नए बीज देता है। यही कारण है कि साहित्यकार इन सर्वसाधारण के लिए लिखी जैन कहानियों को अविलम्ब पढ़ गये। साहित्यकार के अपने इस प्रयोजन के साथ-साथ जैन कथा-साहित्य की व्यापकता तो स्वत फलित होती ही है।"

जैन कहानिया दिगम्बर श्वेताम्बर आदि सभी जैन-समाजो म मान्य हुई। शास्त्र सब जैन-समाजो के एक भले ही न हो, पुरातन कथा-साहित्य सबका समान है। सरल व सुबोध भाषा में जैन-कथा-साहित्य का उपलब्ध हो जाना सभी के लिए रुचिवर्धक प्रमाणित हुआ। बच्चों, वृद्धों युवकों व महिलाओं म जैन कहानिया पढने की अदभुत उत्सुकता देखी गई। जो महिलाएँ एक एक शब्द जोड जोड कर पढती थी, वे दशो भाग पढने तक हिन्दी धारा प्रवाह पढने लगीं। धार्मिक परीक्षाओं

में इनका उपयोग हुआ। विद्यालयो के पुस्तकालयो मे ये व्यापक स्तर पर पहुची। जैन-जैनेतर विद्यार्थी स्पर्धापूर्वक इन्हे पढते। अग्रिम भागो की स्थान-स्नान से माँग आने लगी।

सर्वसाधारण प्रशस्ति के साथ विचार-जगत् से अनेक सुझाव भी आने लगे। कुछ एक लोगो ने कहा—पुस्तक-माला का नामकरण जैन कहानिया न होकर धार्मिक कहानिया या वोध-कहानियाँ ऐसा कोई नाम होता, तो इसकी व्यापकता सार्वदेशिक हो जाती। कुछेक विचारको ने सुझाया—कहानियाँ वर्गीकृत होनी चाहिए थी। प्रत्येक कहानी का ग्रथ-सदर्भ उसके साथ होना चाहिए था।

नामकरण के परिवर्तन का सुझाव अधिक उपयोगी नही लगा। सार्वजनिक या सार्वदेशिक नाम लेने से ही कोई पुस्तक या कोई प्रवृत्ति सर्वमान्य व व्यापक वन जाती है, यह निरा भ्रम है। दूसरी वात, परम्परागत आधारो पर कथा-साहित्य की अनेक धाराएँ साहित्य-जगत् मे पहले से ही प्रसारित हो चली है। इस स्थिति मे एक परम्परा-विशेप के कथा-साहित्य को सार्वजनिकता मे विलीन कर देना उस परम्परा के साथ ही न्यायोचित नही होता। ऐसा शक्य भी नही था। नामकरण के वदल देने से कथावस्तु तो वदलती नही। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी कथावस्तु मे अपनी सस्कृति, सभ्यता और परम्परा के मूल्य प्रतिविम्वित होते है। यह आधार मिटा दिया जाए, तो कथावस्तु ही निराधार व निरर्थक वन जाती है। अस्तु, इन्ही तथ्यो को ध्यान मे रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक-माला का नाम 'जैन कहानियाँ' ही अधिक सगत माना गया है।

वर्गीकरण और ग्रथ-सदर्भ का सुझाव शोध विद्वानो की ओर से था। सुझाव उपयोगी तो था ही, पर उसकी भी अपनी

सीमा थी। प्रस्तुत पुस्तक-माला मुख्यत लोक-साहित्य के रूप में प्रकाशित हो रही है। अधिक से-अधिक लोग इसे पढे व सात्विक प्रेरणा ग्रहण करें यह इसका अभिप्रेत है। सव-साधारण को कथा की आत्मा से व उसकी रोचकता से अधिक प्रेम होता है, न कि उसके मूल ग्रथ और ग्रथकार से। किसी कथा को पढते ही शोध विद्वान की दृष्टि इस पर पहुँचेगी कि इस कथा का मूल आधार क्या है वह कितना पुराना है। इस कथावस्तु पर अन्य किस कथावस्तु का प्रभाव ह, अन्य परम्पराओं मे यह कथा मिलती है या नही, आदि-आदि। शोध-विद्वान की ये मौलिक जिज्ञासाएँ सव साधारण के लिए भूल भुलया है। अस्तु पुस्तक माला के प्रयोजन को समझते हुए प्रत्येक कथा के साथ गवेषणात्मक टिप्पण जोडना आवश्यक नही माना गया। फिर भी लेखक ने इन अग्रिम भागों की कथाओं के मालिक आधार अपने प्राक्कथन मे वता दिए है। इससे शोध विद्वानों को प्राथमिक दिग्दशन तो मिल ही जायेगा। लेखक की परिकल्पना है, इस पुस्तक-माला की सम्पूर्ति के पश्चात् समग्र कथाओं के वर्गीकृत रूप का गवेपणात्मक टिप्पणियो के साथ स्वतन्त्रसस्करण पृथक ग्रथ के रूप में तयार कर दिया जाए।

कथावस्तु की सरसता वढाने के लिए प्रकाशक ने प्रत्यक कथा में घटना-सम्वद्ध एक एक चित्र दिया है। चित्रकार न जन साधु की मुद्रा लेखक की वेशभषा में ही चित्रित की। यह स्वाभाविक भी था। पर स्थिति यह है कि जैन-साधु की कोई भी एक वेप भूपा जन-समाज में सवसम्मत नहीं ह। दिगम्बर मुनि अचेलक हैं। श्वेताम्बर मुनि वस्त्र धारक ह, पर उनमें भी दो प्रकार हैं, मुखपतिवद्ध और अमुखपतिवद्ध-

श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि अमुखपतिबद्ध है तथा स्थानकवासी और तेरापन्थी मुखपतिबद्ध हैं। स्थानकवासियो और तेरापन्थियो मे भी मुखपति के छोटे-बडेपन व आकार-प्रकार का अन्तर है। सहस्राब्दियों पूर्व के जैन-साधुओं का श्वेताम्बर रूप था या दिगम्बर रूप, यह भी अपनी-अपनी मान्यता का विषय है। इस स्थिति मे गौतम, स्थूलिभद्र आदि प्राचीन व सर्वमान्य भिक्षुओ की वेष-भूषा क्या चित्रित की जाए, यह एक जटिल प्रश्न बन जाता है। हाँ, महावीर व अन्य तीर्थंकरो के स्वरूप मे सभी जैन-समाज एकमत है। उनकी अचेलक व्यवस्था निर्विवाद है। दसो भाग ज्यो ही प्रकाशित होकर आये और चित्रो मे जहा-जहाँ जैन मुनियो की उपस्थिति आई, वहाँ-वहाँ उनका स्वरूप मुखपतिबद्ध आया। मुखपति भी तेरापन्थी आकार-प्रकार की। लेखक के लिए यह सब सकोच का विषय बना। उनके मन मे तो ऐसा कोई आग्रह था नही। स्थितिवश यह सब हुआ। प्रश्न यह है कि जैन-साधु का कोई भिन्न स्वरूप भी चित्रकार देता, तो क्या देता? कोई सर्व-सम्मत रूप है भी तो नही।

लेखक के प्रति अकारण ही कोई सकीर्णता की धारणा बने, यह भी वाछनीय नही था, अत आगामी दस भागो के लिए यही निर्णय लिया गया कि जैन साधु की अनिवार्यता वाला घटना-प्रसग चित्रबद्ध किया ही न जाए। इस निर्णय मे चित्रकार की स्वतन्त्रता मे बाधा आएगी। यथार्थ व प्रभावपूर्ण घटना को छोडकर उसे साधारण घटना-प्रसगो को चित्रबद्धता देनी होगी। इससे पुस्तक व कथावस्तु का आकर्षण भी न्यून होगा, पर इसके सिवाय प्रस्तुत समस्या का कोई समाधान भी तो नही था।

पूव प्रकाशित भागों के नए सस्करणों मे भी यह सशोधन उपादेय हो सकेगा चालू सस्करणों को तो स्थित प्रज्ञ पाठक निर्भ्रान्त भाव से पढते रहगे, यह आशा है ही।

लेखक की समग्र जन कथा साहित्य को इसी शृ खला में लिख देने की परिकल्पना है। उन्होने अपने लखन का विपय ही कथा साहित्य बना लिया है। पश्चिमी लेखकों ने इसी प्रकार एक एक विपय पढकर बडे बडे साहित्यिक काय कर बताए है। भारतीय लेखक व साहित्यकार शृ खलाबद्ध काय के पर्याप्त आदी नही बने है। अब वह क्रम उनमें आ रहा है, यह स तोप की बात है। मुनि महेन्द्रकुमार जी प्रथम' अपने सकल्प को परिपूण कर हिन्दी जगत को बडी देन देगे व जन जगत को अनुगहीत करेंग, ऐसी आशा है।

तेरापथ साधु सघ लेखको, कवियों एव साहित्यकारों का एव उवर धाम है। अनुशास्ता आचाय श्री तुलसी के निर्देशन म अनेक धाराओं म साहित्यिक काय चल रहा है। इसी का एव उदाहरण मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम की ये कथा कृतियां है।

१२ दिसम्बर, १९७०

—मुनि नगराज

अनुक्रम

१

आरामशोभा

पलास ग्राम में अग्निशर्मा ब्राह्मण रहता था। वह यज्ञ आदि अनुष्ठानो मे निपुण और चारों वेदों का पारगामी विद्वान् था। उसकी पत्नी का नाम ज्वलनशिखा था। कन्या का नाम विद्युत्प्रभा था। वह विशेष सुन्दरी थी। जब वह आठ वर्ष की हुई, उसकी माता की छाया उस पर से उठ गई। विद्युत्-प्रभा को गहरा आघात लगा। साथ ही सारे घर का भार भी उस पर ही आ पडा। वह सूर्योदय से पहले ही उठती, घर की सफाई करती, रसोई-घर को लीपती और उन सब कार्यो से निवृत्त होकर गौओ को चराने के लिए जंगल मे जाती। मध्याह्न मे गौओ को लेकर घर आती, दूध निकालती, पिता को भोजन कराती, स्वय भोजन करती और गौओ को लेकर पुन जगल चली जाती। सन्ध्या के बाद घर लौटती। साय-कालीन कृत्यो से जब निवृत्त होती, वह बहुत थक जाती थी। फिर भी वह पिता के सोने पर ही सोती और

उसके उठने से पूव ही उठ जाती थी। यह उसकी दैनिक चर्या थी।

विद्युत्प्रभा एक दिन पिता के पास आई। खिन्नता के साथ उसने कहा—"मै अब घर का भार सम्हालने में असमर्थ हूँ। अति भार से बैल भी खिन्न हो जाता है। मेरा निवेदन है, आप किसी कुलीन कन्या के साथ विवाह कर लें। मेरा भार कुछ हल्का होगा और आपकी गृहस्थी भी समुचित प्रकार से चलेगी।"

अग्निशर्मा ने विद्युत्प्रभा का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। उल्लास के साथ विवाह करके अग्निशर्मा घर लौटा। विद्युत्प्रभा भी नई माँ को अपने आँगन मे पाकर प्रमुदित हुई। किन्तु, उसका प्रमोद कुछ ही दिनो मे विषाद मे बदल गया। नई मा किसी प्रकार का काम नही जानती थी और आलस्य भी उसका दामन नही छोडता था। विद्युत्प्रभा की सारी योजनाएँ ढह गई। वह अपने भाग्य को कोसती ही रही। वह सोचने लगी, इतने दिन मेरे लिए पिताजी के ही काय थे। अब माता का काय भी मुझे ही निवटाना पडता है। सुख चाहा गया था और मूल की ही क्षति हो गई।

कष्ट के क्षण भी लम्बे हो जाते हैं। विद्युत्प्रभा ने जसे तैसे चार वर्षों का समय गुजारा। वह बारह

वर्ष की हो गई । एक दिन वह जगल में गौएँ चरा रही थी । एक वृक्ष की छाया मे लेट गई । उसे नीद आ गई । गौएँ आसपास चर रही थी । सहसा एक महाकाय, श्यामवर्ण रक्ताक्ष व चपल गति सर्प धीरे-धीरे विद्युत्प्रभा के पास आया । मनुष्य-भाषा में उसने कहा—"बाले ! मेरे से तुम मत घबराना । जैसे मै कहूँ, उस प्रकार से करो । मै इस वनखण्ड मे चिर-काल से निवास करता हूँ। पुण्य-योग से मै यहाँ आनन्द मे हूँ । किन्तु, आज मेरे पाप का उदय हो गया है । कुछ गारुडिक मुझे पकडने के प्रयत्न मे है। मै भीत हुआ तुम्हारी शरण मे आया हूँ । वे पापात्मा मुझे खोजते हुए यहाँ आयेंगे । निश्चित ही वे मुझे पकड लेगे और पिटारी मे बन्द कर भयकर कष्टो मे झुला देगे। तुम करुणाशीला हो । मुझे अपनी गोद मे छिपा लो और वस्त्र से ढाक लो । यह परोपकार है । तुम अपनी झोली इससे भरो ।"

विद्युत्प्रभा के लिए यह एक चामत्कारिक घटना थी । उसने सोचा, पूर्व जन्म में मैने सुकृत का विशेष अर्जन नही किया था, अत यहा दु ख भोगना पड रहा है । यदि यहां भी परोपकार नही किया, तो सुख का द्वार मेरे लिए कैसे खुलेगा ? उसने तत्काल हाथ पसार

चन्द्रमणि सर्प धीरे धीरे विद्युत्प्रभा के पास आया। मनुष्य भाषा में उसने कहा— बहन! मेरे से तुम मत घबराना। जैसा मैं कहूं उस प्रकार से करो। मैं इस वन-खंड में चिरकाल से निवास करता हूं।

कर सर्प को अपनी गोद में ले लिया और उसे अच्छी तरह छुपा लिया। गारुडिक भी सर्प के पीछे लगे हुए थे। वे विद्युत्प्रभा के पास पहुंचे। उन्होने सर्प के बारे मे उससे प्रश्न किया। विद्युत्प्रभा ने उस प्रसग को इतने मे ही समाप्त कर दिया, मै तो मुख ढांक कर यहाँ लेट रही थी।

गारुडिक परस्पर एक-दूसरे से कहने लगे—"यह तो नादान बालिका है। उस प्रकार के भयकर सर्प को देखते ही कांप उठती। यहा-कहा वह सर्प हो सकता है।" उन्होने चारो ओर सर्प को खोजा, किन्तु, वह नही मिला। गारुडिक चले गए। विद्युत्प्रभा ने सर्प से कहा—"अब तुम्हारे लिए भय नही है। आओ, बाहर आओ।" उसने वस्त्र हटाकर अपनी गोद की ओर नजर डाली। उसे सर्प दिखाई नही दिया। वह चकित होकर चारो ओर देखने लगी। वह सोच रही थी, क्या यह प्रत्यक्ष था, स्वप्न था या चित्त का कोई विभ्रम था? उसके चिन्तन को विस्तृत होने का अवकाश नही मिला। उसी समय एक आवाज आई—मैं तुम्हारे पौरुप से प्रभावित हू। तुम वरदान मागो।

विद्युत्प्रभा ने चारो ओर अपनी दृष्टि घुमाई। उसके सामने एक महर्द्धिक देव खड़ा था और वह अपने

कथन को पुन पुन दोहरा रहा था। विद्युत्प्रभा ने कहा—"देवोत्तम! यदि तुम मेरे पर प्रसन्न हो, तो मेरी गौएं धूप से बहुत पीडित होती है, तुम उनके इस कष्ट को दूर करो।"

देव ने लम्बा उसास छोडा। उसने मन-ही-मन सोचा—यह क्या याचना की। सारा दारिद्रय दूर हो सकता था, पर, यह अज्ञ है। कोई बात नही, इसकी कामना भी पूर्ण होनी चाहिए। देव ने उसके ऊपर नन्दनवन के तुल्य एक उद्यान की रचना कर दी। विद्युत्प्रभा से देव ने कहा—"इस उद्यान मे सब वस्तुओं के फल-फूल रहेंगे। तू जहा कही भी जायेगी, यह उद्यान भी छत्राकार तेरे मस्तक पर रहेगा और तेरा अनुगमन करेगा। देवागनाए जैसे नन्दनवन में क्रीडा करती हैं, उसी प्रकार तू भी इसी उद्यान में क्रीडा करती रहेगी। तेरी गौओं को तनिक भी कष्ट नहीं होगा। जब कभी कष्ट का समय हो, मेरा स्मरण करना, मैं तेरे सहयोग मे उपस्थित रहूगा।"

देव अपने स्थान पर लौट गया। विद्युत्प्रभा ने उस उद्यान के मधुर फल खाये और सायकाल गौओं को लेकर घर लौट आई। नई मा ने उससे भोजन का आग्रह किया, पर, उसने उसे टाल दिया। वह प्रतिदिन

रात्रि के अन्तिम प्रहर मे गौओ को लेकर जगल में चली जाती और वहा दिव्य क्रीडाए करती।

विद्युत्प्रभा एक दिन सघन वृक्ष की छाया मे सो रही थी। पाटलिपुत्र का राजा जितशत्रु भी सेना के साथ कही जा रहा था। नन्दनवन के तुल्य उस सघन उद्यान को देखकर उसने भी वही विश्राम लिया। राजा का सिहासन एक सघन वृक्ष की छाया मे लगा दिया गया। हाथी, घोडे, बैल, ऊँट आदि वृक्षो से बाध दिये गये और रथो को वृक्षो की छाया में खडा कर दिया गया। सैनिक भी वृक्षो की छाया मे आराम से लेट गये। चारो ओर कोलाहल होने लगा। विद्युत्-प्रभा जाग उठी। उसने चारों ओर दृष्टि दौडाई। उसे गौए नजर नही आई। उसने सोचा, सेना के कोलाहल से ही गौए दूर गई है। मुझे उन्हे खोज कर वापस लाना चाहिए। वह उठकर जगल की ओर दौड पडी। उद्यान भी उसके पीछे-पीछे दौडने लगा। वृक्षो से बन्धे हुए हाथी, घोडे, ऊँट, वृषभ आदि भी उसके साथ थे। राजा यह सब देखकर चकित हुआ। उसके लिए यह अभूतपूर्व घटना थी। राजा के ऊपर से छाया हट गई। उसने उसका रहस्य जानने का प्रयत्न किया। उसे तत्काल ज्ञात हुआ, वह कन्या दौड

रही है, अत यह उद्यान भी दौड रहा है। उसने मन्त्री के समक्ष अपना अभिप्राय व्यक्त किया। मन्त्री तत्काल गया। उसने विद्युत्प्रभा को वापस लौटने का आग्रह किया और गौओं को ले आने का आश्वासन दिया। विद्युत्प्रभा उसी स्थान पर लौट आई। उद्यान भी उसी स्थान पर टिक गया। हाथी घोड़े, सैनिक आदि सभी व्यवस्थित हो गये। राजा ने भी सुख की सास ली।

मन्त्री ने राजा से कहा—"आपने जो कुछ चमत्कार देखा है, वह सब इस कन्या का ही है।" राजा ने उसका समर्थन किया और प्रश्न भी किया—'यह स्वर्ग की अप्सरा है, पाताल-कन्या है या देव-कन्या है? कितना सुन्दर हो, यदि यह राज-महलों की शोभा बढा सके।" मन्त्री ने भी इसे उपयुक्त समझा। वह विद्युत्-प्रभा के पास आया। उसे राजा का परिचय दिया और राजा के प्रति उसे अनुरक्त करने का प्रयत्न भी किया। उचित अवसर देखकर विवाह का प्रस्ताव रखा। विद्युत्प्रभा की आंखें लज्जा से झुक गईं। प्रत्युत्तर में उसने कहा—"कुलांगना अपनी इच्छा से कभी वरण नहीं करती। उसकी सारी व्यवस्था का भार पिता पर होता है। आप मेरे पिताश्री से बात

करे। उनका नाम अग्निशर्मा है और वे निकटवर्ती ग्राम मे रहते है।"

मन्त्री ग्राम मे आया। अग्निशर्मा से सारी बाते की। उसे इस प्रस्ताव से हार्दिक प्रसन्नता हुई। मन्त्री उसे अपने साथ लेकर उसी वन-खण्ड मे चला आया। राजा के लिए विलम्ब असह्य था, अत. उसी समय और वही गांधर्व-विधि से विवाह हो गया। राजा ने विद्युत्प्रभा का नाम बदल दिया। उसके ऊपर सुन्दर उद्यान रहता था; अत उसका नाम आरामशोभा रखा गया। राजा ने ब्राह्मण की दरिद्रता के निवारण के लिए बारह गाँव प्रदान किये।

राजा जितशत्रु आरामशोभा के साथ हाथी पर आरूढ हुआ। वह उद्यान भी उसके ऊपर छत्राकार हो गया। ज्यो ही राजा ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया, उद्यान भी साथ-साथ चलने लगा। मन्त्री पहले से ही राजधानी पहुँच गया था। उसने नगर की साज-सज्जा करवाई और महोत्सव के साथ राजा ने नगर में प्रवेश किया। स्थान-स्थान पर नागरिको की टोलियाँ खडी हुई एक ही चर्चा कर रही थी, राजा भाग्यशाली है। इसने पूर्व-जन्म मे निश्चित ही बहुत सारा सुकृत-सचय किया है, अन्यथा ऐसी

रही है, अत यह उद्यान भी दौड रहा है। उसने मत्री के समक्ष अपना अभिप्राय व्यक्त किया। मत्री तत्काल गया। उसने विद्युत्प्रभा को वापस लौटने का आग्रह किया और गौओं को ले आने का आश्वासन दिया। विद्युत्प्रभा उसी स्थान पर लौट आई। उद्यान भी उसी स्थान पर टिक गया। हाथी घोडे, सैनिक आदि सभी व्यवस्थित हो गये। राजा ने भी सुख की सास ली।

मत्री ने राजा से कहा—"आपने जो कुछ चमत्कार देखा है, वह सब इस कन्या का ही ह।" राजा ने उसका समथन किया और प्रश्न भी किया— 'यह स्वग की अप्सरा है, पाताल-कन्या है या देव-कन्या है ? कितना सुन्दर हो, यदि यह राज-महलों की शोभा बढा सके।" मत्री ने भी इसे उपयुक्त समझा। वह विद्युत्-प्रभा के पास आया। उसे राजा का परिचय दिया और राजा के प्रति उसे अनुरक्त करने का प्रयत्न भी किया। उचित अवसर देखकर विवाह का प्रस्ताव रखा। विद्युत्प्रभा की आँखे लज्जा से झुक गईं। प्रत्युत्तर मे उसने कहा—"कुलागना अपनी इच्छा से कभी वरण नहीं करती। उसकी सारी व्यवस्था का भार पिता पर होता है। आप मेरे पिताश्री से बात

करे। उनका नाम अग्निशर्मा है और वे निकटवर्ती ग्राम मे रहते है।"

मन्त्री ग्राम में आया। अग्निशर्मा से सारी बातें की। उसे इस प्रस्ताव से हार्दिक प्रसन्नता हुई। मन्त्री उसे अपने साथ लेकर उसी वन-खण्ड मे चला आया। राजा के लिए विलम्ब असह्य था, अत उसी समय और वही गान्धर्व-विधि से विवाह हो गया। राजा ने विद्युत्प्रभा का नाम बदल दिया। उसके ऊपर सुन्दर उद्यान रहता था, अत उसका नाम आरामशोभा रखा गया। राजा ने ब्राह्मण की दरिद्रता के निवारण के लिए बारह गाँव प्रदान किये।

राजा जितशत्रु आरामशोभा के साथ हाथी पर आरूढ हुआ। वह उद्यान भी उसके ऊपर छत्राकार हो गया। ज्यो ही राजा ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया, उद्यान भी साथ-साथ चलने लगा। मन्त्री पहले से ही राजधानी पहुँच गया था। उसने नगर की साज-सज्जा करवाई और महोत्सव के साथ राजा ने नगर में प्रवेश किया। स्थान-स्थान पर नागरिको की टोलियाँ खडी हुई एक ही चर्चा कर रही थी, राजा भाग्यशाली हैं। इसने पूर्व-जन्म मे निश्चित ही बहुत सारा सुकृत-सचय किया है, अन्यथा ऐसी

रूपवती रानी की प्राप्ति और साथ ही आकाश-स्थित नन्दनवन की उपलब्धि दुर्लभ है। राजा के कानों में जब ये शब्द पड़ते, उसका मानस उत्फुल्ल हो जाता। वह राजमहलों में पहुँचा। आरामशोभा के लिए वहाँ सारी उच्चस्तरीय व्यवस्थाएं की गईं। राजा जितशत्रु और रानी आरामशोभा का जीवन सुख में बीतने लगा।

अग्निशर्मा ब्राह्मण को नव परिणीता पत्नी अग्निशिखा से एक कन्या हुई। वह जब यौवन में प्रविष्ट हुई, उसकी माँ सोचने लगी यदि किसी प्रकार आरामशोभा का शरीरान्त हो जाये, तो तुल्य-गुण समझ कर राजा इसे स्वीकार कर लेगा। यह मेरे लिये व कन्या के लिए भी सुखद व स्वर्णिम होगा। सपत्नी की कन्या को मारने में पातक भी नहीं गिना जाता है। उसने अपनी सारी योजना बनाई। एक दिन अग्निशर्मा से वह कहने लगी—'आरामशोभा को ससुराल गये हुए इतने वर्ष हो गये, हमने उसके लिए कभी भी कुछ नहीं भेजा। कन्या के लिए पीहर की वस्तु विशेष आनन्द दायक होती है।"

अग्निशर्मा हँसने लगा। उसने कहा—'आरामशोभा अब गरीब नहीं रही है। वह एक राज-रानी बन गई है। उसके लिए किसी वस्तु की कमी नहीं है।"

अग्निशिखा ने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा—'ससुराल मे सब कुछ होते हुए भी माता-पिता द्वारा प्रेपित वस्तु मे कन्या की विशेष ममता होती है। धनाढ्य कन्या भी समय-समय पर पीहर के उपहार की प्रतीक्षा करती ही रहती है।'

अग्निशिखा के आग्रह को अग्निशर्मा टाल न सका। अग्निशिखा ने केसरिया मोदक बनाये। उन्हे विप मे भावित किया और एक घट मे डाल कर ऊपर से लीप दिया। अग्निशर्मा के हाथ मे थमाते हुए कहा—"इसे आप आरामशोभा को दे आये। किन्तु, उसके सिवाय, अन्य किसी को न देना। आरामशोभा को भी ये मोदक दूसरे को नही देने है, अत आप उसे भी सावधान कर दे। यदि दे देगी, तो हमारा उपहास होगा, क्योकि हम गरीब है। ये मोदक अधिक स्वादिष्ट नही है।" अग्निशर्मा उसके दुष्ट अभिप्राय को नही जान सका। कलश लेकर पाटलीपुत्र की ओर चल पड़ा। जब वह लगभग निकट पहुँचा, थक गया था। एक वट-वृक्ष के नीचे सो गया। कलश उसके हाथ के नीचे था। उसे गहरी नीद आ गई।

वट वृक्ष पर एक यक्ष रहता था। उसने अपने ज्ञान-बल से अग्निशिखा के बुरे अभिप्रायो को जान

रूपवती रानी की प्राप्ति और साथ ही आकाश
नन्दनवन की उपलब्धि दुर्लभ है। राजा के कानों
ये शब्द पड़ते, उसका मानस उत्फुल्ल हो जाता
राजमहलों मे पहुँचा। आरामशोभा के लिए वह
उच्चस्तरीय व्यवस्थाए की गई। राजा जितश
रानी आरामशोभा का जीवन सुख में बीतने ल

अग्निशर्मा ब्राह्मण को नव परिणीता पत्नी
शिखा से एक कन्या हुई। वह जब यौवन मे
हुई, उसकी माँ सोचने लगी, यदि किसी
आरामशोभा का शरीरान्त हो जाये, तो तु
समझ कर राजा इसे स्वीकार कर लेगा।
लिये व कन्या के लिए भी सुखद व स्वर्णिम
सपत्नी की कन्या को मारने मे पातक भी नह
जाता है। उसने अपनी सारी योजना बनाई
दिन अग्निशर्मा से वह कहने लगी—'आरामशो
ससुराल गये हुए इतने वर्ष हो गये, हमने उसके
कभी भी कुछ नहीं भेजा। कन्या के लिए पीहर
वस्तु विशेष आनन्द-दायक होती है।"

अग्निशर्मा हँसने लगा। उसने कहा— आरा
शोभा अब गरीब नहीं रही है। वह एक राज-रान
बन गई है। उसके लिए किसी वस्तु की कमी नहीं है।"

अग्निशिखा ने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा—"ससुराल मे सब कुछ होते हुए भी माता-पिता द्वारा प्रेषित वस्तु मे कन्या की विशेष ममता होती है। धनाढ्य कन्या भी समय-समय पर पीहर के उपहार की प्रतीक्षा करती ही रहती है।"

अग्निशिखा के आग्रह को अग्निशर्मा टाल न सका। अग्निशिखा ने केसरिया मोदक बनाये। उन्हे विष से भावित किया और एक घट मे डाल कर ऊपर से लीप दिया। अग्निशर्मा के हाथ मे थमाते हुए कहा—"इसे आप आरामशोभा को दे आये। किन्तु, उसके सिवाय, अन्य किसी को न देना। आरामशोभा को भी ये मोदक दूसरे को नही देने है, अत: आप उसे भी सावधान कर दे। यदि दे देगी, तो हमारा उपहास होगा, क्योकि हम गरीब है। ये मोदक अधिक स्वादिष्ट नही है।" अग्निशर्मा उसके दुष्ट अभिप्राय को नही जान सका। कलश लेकर पाटलीपुत्र की ओर चल पडा। जब वह लगभग निकट पहुँचा, थक गया था। एक वट-वृक्ष के नीचे सो गया। कलश उसके हाथ के नीचे था। उसे गहरी नीद आ गई।

वट वृक्ष पर एक यक्ष रहता था। उसने ज्ञान-बल से अग्निशिखा के बुरे अभिप्रायो को

लिया। उसने सोचा, मेरे जैसे समर्थ व्यक्ति के होते हुए भी क्या आरामशोभा को कोई मृत्यु-दुःख दे सकेगा? उसने तो पूर्व-जन्म में बहुत सुकृत-सञ्चय किया है। यक्ष ने अपनी चातुरी से वे मोदक निकाल लिए और उनके स्थान पर अमृत-तुल्य स्वादु मोदक रख दिये। अग्निशर्मा जगा और कलश लेकर चल पड़ा। राज द्वार पर पहुँचा। द्वारपाल ने राजा से प्रार्थना की। राजा द्वारा आदेश प्रदान किए जाने पर अग्निशर्मा द्वारपाल के साथ राज-सभा में प्रविष्ट हुआ। उसने राजा को आशीर्वाद प्रदान किया और दोनों ओर से कुशल प्रश्न पूछे गए। दोनों ओर से विचारों का आदान प्रदान हुआ। अग्निशर्मा ने उल्लास के साथ मोदकों से भरा वह कलश राजा को भेंट किया। राजा उसे पाकर अत्यन्त उल्लसित हुआ। उस कलश को आरामशोभा के महलों में भेज दिया गया। ब्राह्मण को वस्त्र-आभरण आदि से सत्कृत किया गया।

कुछ समय पश्चात् राजा का मन भी उन मोदकों के लिए ललचाया। वह भी आरामशोभा के महलों में चला आया। रानी ने राजा का स्वागत किया। रानी ने राजा से अनुमति पाकर कलश को खोला। मार्ग मग्न सुवासित हो गया। दिव्य मोदकों को देखकर

राजा आह्लादित हुआ। उसने कहा—"निश्चित ही ये मोदक अमृत रस से भावित है।" राजा ने रानी की ओर प्रेम-भरी दृष्टि से देखा और एक-एक मोदक अन्य रानियो को देने के लिए भी कहा। आरामशोभा इस आदेश से अतिशय प्रसन्न हुई। उसने अपने हाथो से उस काम को सम्पन्न किया। अनूठे मोदक पाकर वे सभी अत्यन्त हर्षित हुई। सभी रानियो ने आराम-शोभा व उसकी माँ के चातुर्य की भूरि-भूरि प्रशसा की।

राजा जितशत्रु जब राज-सभा मे आया, अग्निशर्मा ने आरामशोभा को पीहर भेजने का आग्रह किया। राजा ने स्मित-हास्य के साथ कहा—"रानी सूर्य को भी नही देख सकती, तो उसके पीहर जाने का प्रश्न ही कहाँ से उठ सकता है?" राजा ने ब्राह्मण देवता को विसर्जित कर दिया। वह घर आया। ब्राह्मणी से सारा उदन्त कहा। वह बहुत हर्षित हुई और उत्सुकता-पूर्वक आरामशोभा की मृत्यु के सवाद की प्रतीक्षा करने लगी। पर, उसे वह सवाद नही मिला। आराम-शोभा की कुशलता के ही जब उसे समाचार मिले, वह अत्यन्त खिन्न हुई। उसकी आशाओ पर पानी फिर गया। उसने सोचा, सम्भव है, विष की मात्रा कम

गई हो, अत मेरा अभीप्सित नही हो सका । मुझे अपना प्रयत्न नही छोडना चाहिए । जो त्रुटि पहले रही है, उसे सुधारना चाहिए और लक्षित मजिल तक पहुँचना ही चाहिए । उसने दूसरी वार उसी प्रकार के मोदक बनाए। इस बार उन्हे उग्र विष से भावित किया। उसी प्रकार कलश में डाला और ब्राह्मण देवता के हाथ में देकर उसे वहाँ से विदा किया । ब्राह्मण उसी वट-वृक्ष के नीचे आया । थका हुआ था अत सो गया । यक्ष ने सारी घटना को जानकर वे मोदक निकाल लिए और उनके स्थान पर अमृत-तुल्य मोदक भर दिए । ब्राह्मण जगा और कलश लेकर राज-सभा मे पहुँचा । मोदकों का कलश पाकर राजा प्रमुदित हुआ । उसने वह कलश रानी आरामशोभा के पास भेज दिया। सभी रानियों को इस वार भी मोदक बाँटे गये । उसी प्रकार आरामशोभा व उसकी माँ की सर्वत्र प्रशंसा हुई ।

अग्निशर्मा अपने घर लौट आया । उसने सारा उदन्त अग्निशिखा को बताया । आरामशोभा की कुशलता के समाचार उसे चौंका देने वाले थे । वह मन-ही-मन अत्यन्त क्लान्त हुई । उसने तीसरी बार फिर प्रयत्न करने का सोचा । इस बार तालपुट देकर उसने

मोदक बनाए और ब्राह्मण को आरामशोभा के पास भेजा। साथ ही इस बार आरामशोभा को निश्चित ही ले आने के लिए कह दिया। यदि राजा भेजने को तैयार न हो तो ब्रह्म-तेज दिखाने का भी उसने परामर्श दिया। ब्राह्मण चला। उसने उसी वट-वृक्ष के नीचे विश्राम लिया। यक्ष ने उन मोदकों को हटा दिया और दिव्य मोदक वहाँ पर रख दिए। अग्नि-शर्मा जगकर चल पड़ा। राजमहलों में पहुँचकर उसने वह करण्ड भेंट किया। राजमहलों में अग्निशर्मा का यशोवाद उसी प्रकार हुआ।

राज-सभा जुड़ी हुई थी। अग्निशर्मा ने आराम-शोभा को पीहर भेजने के लिए आग्रह किया। साथ ही उसने यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि पहली प्रसूति पिता के घर पर ही होनी चाहिए। राजा ने दो टूक उत्तर दिया—"यह न हुआ और न होगा। इसके लिए प्रयत्न करना भी व्यर्थ है।" अग्निशर्मा ने अपना ब्रह्म-तेज दिखलाया। पेट में छुरी घोंपने का अभिनय करते हुए उसने कहा—"यदि आरामशोभा को नही भेजा गया, तो मैं तुम्हे ब्रह्म-हत्या के पाप से कलंकित करूंगा। मैंने कन्या इसलिए नही दी थी कि वह कभी मेरे घर का द्वार भी नही देखे। उसके भी मन में

माता-पिता से मिलने की उत्कण्ठा जागृत होती होगी ? क्या माता-पिता का वात्सल्य भी कोरा ही रहेगा ?"

मन्त्री ने बात को समेटा । उसने राजा से निवेदन किया—"निश्चित ही यह ब्राह्मण पागल हो गया है । यदि इसके निवेदन पर गौर नहीं किया गया, तो यह ब्रह्म-हत्या देते हुए भी नहीं सकुचायेगा । आप रानी को भेजने का निश्चय करें ।"

राजा ने अग्निशर्मा के प्रस्ताव को क्रियान्वित किया । विपुल सामग्री के साथ रानी को विदा किया गया । आरामशोभा उद्यान के साथ पीहर पहुंची । अग्निशिखा ने षड्यन्त्र रच रखा था । आरामशोभा के आगमन से पूर्व ही उसने अपने घर के पीछे कुआ खुदवा लिया था । यथासमय आरामशोभा ने देव-कुमार-सदृश दिव्य पुत्र का प्रसव किया । पुत्र कुछ बड़ा हुआ । कुछ ही दिन बाद आरामशोभा देह चिन्ता के लिए घर के पिछले भाग में गई । उसके साथ उसकी विमाता भी थी । सारी दासियां इधर उधर काम में व्यस्त थीं । कुए को देखकर आरामशोभा ने विमाता से प्रश्न किया । अग्निशिखा ने उत्तर दिया—'यहां तुम्हारे बहुत सारे विद्वषी हैं । दूर से यदि पानी लाया जाए, तो विष मिश्रण की सम्भावना रहती है ।

तू रानी है। तेरी सभी व्यवस्थाओं की ओर ध्यान देना हमारे लिए आवश्यक है। यह कुआ तेरे निमित्त ही खुदवाया गया है।" आरामशोभा का मन सरल था। वह कुए की ओर झाकने लगी। विमाता ने उसे धक्का देकर कुए मे गिरा दिया। आरामशोभा ज्यों ही कुए मे गिरने लगी, उसने यक्ष का स्मरण किया। यक्ष ने अपने वचन का पालन किया। गिरती हुई आरामशोभा को उसने अपने हाथों मे धारण कर लिया। उसने आरामशोभा को सुखद स्थान पर विठला दिया। यक्ष की भौंहें तन गईं। वह अग्नि-शिखा को, उसके दुष्कृत्यो का फल चखाना चाहता था, किन्तु, आरामशोभा ने उसके पैर पकड लिए और वैसा न करने के लिए विवश कर दिया। यक्ष ने पाताल मे ही एक दिव्य घर बनाया। आरामशोभा वही सुखपूर्वक रहने लगी। उद्यान भी उसके साथ वही रहने लगा।

अग्निशिखा ने अपनी कन्या को प्रसूति का वेप पहना कर उसी पलग पर सुला दिया। दासिया आई। उन्होने वहा लावण्य-हीन, विषम शरीर व कुरूपा को देखा, तो उन्हे वहुत आश्चर्य हुआ। उन्होने उसका कारण पूछा। कृत्रिम आरामशोभा ने उत्तर दिया—

"मैं कुछ भी नहीं जानती हूं, यह कैसे हुआ ? पर, मुझे लगता है, कोई अन्तरंग व्याधि हुई है। मेरे रूप आदि के विनाश मे वही मुख्य हेतु हुआ है।" दासियों ने अग्निशिखा से सारी घटना कही। मायाविनी छाती पीटती हुई वहां आई और सहानुभूति से गद्गद स्वर से कहने लगी—"बेटी, तेरी यह अवस्था कैसे हुई ? क्या किसी की नजर लग गई है ? क्या वायु का प्रकोप हो गया है ? क्या तू प्रसूति-जन्य व्याधि से पीडित है ? मैंने जो मनोरथ घड़े थे, वे सभी निष्फल हो गए है।" मायाविनी ने बहुत सारे उपाय किये, पर, उनका कोई सुखद परिणाम सामने नहीं आया।

रानी को लेने के लिए मन्त्री आया। कृत्रिम आरामशोभा अपने परिवार के साथ पाटलीपुत्र के लिए चली। मार्ग मे दासियों ने पूछा—"उद्यान साथ मे कैसे नहीं आ रहा है ?" कृत्रिम आरामशोभा ने उत्तर दिया—"वह पानी पीने के लिए कुए पर गया है। वह हमारे पीछे-पीछे चला आएगा।" जब वह पाटलीपुत्र के समीप पहुची राजा जितशत्रु ने महोत्सव पूर्वक नगर में प्रवेश कराया। देवकुमार के तुल्य पुत्र को देखकर राजा बहुत आह्लादित हुआ, किन्तु रानी का विद्रूप देखा, तो बहुत दुःखित हुआ। उसने उसका

कारण जानना चाहा। उसने वही उत्तर दोहराया, लगता है, कोई अन्तरग व्याधि हुई है? मेरी रूप-सम्पदा उसी कारण से विनष्ट हो गई है। राजा के दु.ख का पार नही रहा। उसने अगला प्रश्न किया—"उद्यान कैसे नही दिखाई दे रहा है?"

रानी ने उत्तर दिया—"वह कुएं पर पानी पी रहा था, अतः मैने उसे पीछे छोड दिया है। कुछ समय वाद वह स्वतः ही आ जाएगा।"

राजा को सन्देह हुआ। वह बार-बार सोचने लगा, यह आरामशोभा ही है या अन्य? लगता है, धोखा हुआ है। उसने पुन· कहा—"प्रिये! उद्यान को लाओ। उसके बिना मुझे चैन नही मिल सकता।"

रानी ने बात को सझाने का प्रयत्न किया। उसने कहा—"आप चिन्ता न करे। समय पर वह भी आ जाएगा।"

राजा को विश्वास हो गया, निश्चित ही यह आरामशोभा नही है। कोई प्रपच है और इसका पता भी लगाया जाना चाहिए।

आरामशोभा पाताल-गृह मे सुख से रह रही थी। उसकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति यक्ष द्वारा होती थी। एक दिन उसने यक्ष से कहा—"पुत्र के विरह से

मैं व्याकुल हो रही हूं । आप ऐसा प्रबन्ध करें, जिससे मैं उस व्याकुलता से भी मुक्त हो सकूं ।"

यक्ष ने उत्तर दिया—"तू मेरी शक्ति से इस अभाव को भी भर सकती है, पर, एक शर्त होगी । रात्रि में तू अपने पुत्र के पास जा सकती है और अपनी अभिलाषा पूर्ण कर सकती है, किन्तु, सूर्योदय से पूर्व ही लौट आना होगा । यदि नहीं आएगी, तो मैं तेरे किसी भी कार्य में सहयोगी नहीं होऊँगा । उस समय तेरी वेणी से एक मृत सर्प गिरेगा । उसके बाद तेरा और मेरा सहयोग-सम्बन्ध सदा के लिए ही विच्छिन्न हो जाएगा । यदि तुझे यह स्वीकार हो तो पुत्र-विरह के कष्ट का निवारण हो सकता है ।"

आरामशोभा ने उसे स्वीकार किया । देव शक्ति से वह राज-महल में गई । अपने कोमल हाथों में पुत्र को लिया, गोद में भरा और उसे खिलाया । लौटने के समय से पूर्व ही उसने शिशु को शय्या में लिटा दिया और चारों ओर अपने उद्यान के फल फूल बिखेर दिए । आरामशोभा पाताल-गृह लौट आई । प्रातःकाल धाय ने सारा वृत्त राजा को निवेदित किया । राजा के पूछने पर कृत्रिम आरामशोभा ने कहा—"स्वामिन् ! उसी आराम से मैं फल फूल ले आई थी । मैंने ही इन्हें

यहाँ बिखेरा है ।"

राजा ने उसकी कलई खोलने के अभिप्राय से प्रति प्रश्न किया—"यदि ऐसा ही है, तो अभी उस उद्यान के फल-फूल ला ।"

कृत्रिम आरामशोभा ने उत्तर दिया—"आज रात को लाऊँगी ।"

राजा ने सोचा दाल में कुछ काला है । रहस्य क्या है, इसका पता भी लगाना चाहिए । दूसरे दिन भी वही घटना घटी । शिशु के चारो ओर फल-फूल बिखरे हुए थे । तीसरे दिन राजा सजग रहा । हाथ मे तलवार लेकर वह दीपक की छाया मे बैठ गया । निश्चित समय पर आरामशोभा आई । उसने शिशु को प्यार किया और निश्चित समय पर वापस लौटने लगी । राजा को निर्णय करते हुए समय नही लगा । उसे दृढ विश्वास हो गया, यही आरामशोभा है ।

प्रातःकाल राजा कृत्रिम आरामशोभा के पास पहुचा । लाल आँखो से उसने उससे कहा—"भद्रे ! उस उद्यान को लौटाकर ला सके, तो ठीक है, वरना मुझे तेरे से कोई प्रयोजन नही है । आज से तू अपना अलग मार्ग चुन ले ।"

कृत्रिम आरामशोभा के पैरो से धरती खिसक

गई। वह किंकर्तव्यविमूढ इधर-उधर देखने लगी। वह न उगल सकी और न निगल सकी। राजा का रोष भडक उठा। वह रानी की भर्त्सना करता हुआ राज सभा में लौट आया।

आरामशोभा रात को पुन आई। शिशु को प्यार दिया और लौटने लगी। राजा छुपा हुआ सब कुछ देख रहा था। उसने आरामशोभा का हाथ पकडा और कहा—"सुभगे ! तूने मुझे ठगने का यह प्रपच क्यों रचा है ? मेरे साथ आँखमिचौनी क्यों खेल रही हो ? अपने महलों में लौट आओ। मैं तुम्हारी अनुपस्थिति में बिलख रहा हूँ।"

अप्रत्याशित घटना से आरामशोभा चौकी। झटका देकर उसने अपना हाथ छुडाने का प्रयत्न किया, किन्तु, उसमें वह सफल नहीं हो सकी। विवशता के स्वरों में उसने कहा—"प्रियवर ! इसके पीछे कोई कारण है और उसे पूछने का आप अभी प्रयत्न न करें। मैं कल आपको सारी घटना बतला दूंगी। मुझे आप आज विसर्जित कर दें। यदि आप अभी पूछने का आग्रह करेंगे, तो मुझे पश्चात्ताप होगा।"

राजा ने उत्तर दिया—"मेरी आँखें बहुत दिनो की प्यासी हैं। हाथ आये इस प्रसग को मैं ऐसे ही

झटका देकर उसने अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु, उसमें वह सफल नहीं हो सकी। विवशता के स्वरों में उसने कहा—"प्रियवर, इसके पीछे कोई कारण है और उसे पूछने का अभी आप प्रयत्न न करें।"

नही जाने दूगा। कल होगा, किसके लिए ? एक एक क्षण मेरे लिए भारी हो रहा है।"

आरामशोभा दीवाल और लाठी के बीच आ गई। घटना बताने मे समय लगता था और न बताने में राजा छोडने को प्रस्तुत नहीं था। आरामशोभा ने आदि से अब तक की घटना कह डाली। उसने कहने मे काफी सक्षेप किया, किन्तु, समय लग ही गया। पूर्व के क्षितिज से अरुण सूर्य की किरणें चारों ओर छितर आई। आरामशोभा के वेणीदण्ड से मृत सप नीचे गिरा। "हा ! मैं अभागिन हूँ, मेरा सवस्व लूटा गया, मेरी कल्पना धूलि धूसरित हो गई", सहसा ही आरामशोभा के मुह से ये शब्द निकल पडे और साथ ही वह मूच्छित होकर भी गिर पडी। पानी छिडकने व शीतल वायु के प्रयोग से वह सचेतन हुई और पुन आँसू गिराती हुई अपने भाग्य को कोसने लगी। राजा ने उसे सात्वना दी और कहा—"भवितव्यता को कौन टाल सकता है ? जा हुआ, हो गया। उसे भूलो और अपने भविष्य को सुनहला करने का प्रयत्न करो।"

कृत्रिम आरामशोभा के प्रति राजा का रोष उभर आया। उसने उसे आरक्षको के हाथ पकडवाया और उसे कोडों से पिटवाया। आरामशोभा का दिल अपनी

बहिन के प्रति करुणा से भर आया। उसने राजा के पाँव पकड़ लिए और उसे क्षमा प्रदान करने की प्रार्थना की। राजा उस निवेदन को टाल न सका। फिर भी उसने उसे शहर से निष्कासित कर दिया। राजा ने सुभटों को आदेश देकर ब्राह्मण को दिए गए बारह गाँवों को भी हस्तगत कर लिया और उसका सारा धन छीन लिया। अग्निशर्मा को अग्निशिखा के साथ देश से निकाल दिया।

आरामशोभा पुन उन्ही राजमहलों में रहने लगी। आनन्द से समय बीतने लगा। एक दिन राजा और रानी परस्पर वार्ता-मग्न थे। आरामशोभा के मन में जिज्ञासा उभरी—"मेरा पूर्व जीवन दुःख मे बीता। दुःख के बाद सुख का उदय हुआ। इसके पीछे मेरे द्वारा आचीर्ण शुभ-अशुभ कर्म ही योगभूत होने चाहिए। मैं उन्हे जानना चाहती हूँ।" संयोग की बात थी, उन्ही दिनों आचार्य श्री वीरभद्र का पाँच सौ साधुओं के परिवार से वहाँ शुभागमन हुआ। राजा और आरामशोभा ने आचार्य के उपपात का लाभ लिया। आरामशोभा ने अपनी जिज्ञासा भी प्रस्तुत की। आचार्य ने उस प्रसंग पर विस्तार से प्रकाश डाला। आरामशोभा उसे सुनकर मूर्च्छित होकर गिर

पडी। उपचार से सचेतन हुई। अजलिवद्ध होकर उसने निवेदन किया—"आपने मेरा जो जातक[1] वताया, वह सवथा सही है। जाति स्मरण के द्वारा मैं उसे उसी प्रकार जान रही हूँ। मैं ससार से उद्विग्न हूँ। राजा से अनुमति पाकर दीक्षित होना चाहती हूँ।"

राजा ने आरामशोभा के विचारो का अनुमोदन किया और अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा—"ससार की असारता जान लेने के वाद कौन उसमें रचा रहेगा? मैं भी तुम्हारे साथ दीक्षित होना चाहूँगा।"

आचाय श्री वीरभद्र की ओर उन्मुख होकर उसने कहा—"प्रभो! मैं घर जाकर आरामशोभा के पुत्र मलयसुन्दर को राज्य-भार सौंपूगा और शीघ्र ही आपके चरणों में उपस्थित होने का प्रयत्न करूँगा। जब तक मैं न आ पाऊँ, अनुग्रहपूवक आप यहीं विराजने का कष्ट करें।"

राजा राज-महलों में आया। राजकुमार मलयसुन्दर को राज-सिंहासन पर स्थापित किया। रानी के साथ राजा ने भी भागवती दीक्षा ग्रहण की। प्रव्रज्या वे

१ विस्तार के लिए देखें आरामशोभा जातक।

अनन्तर दोनों ने ही ज्ञानाभ्यास में अपने समय का उपयोग किया। दोनों ही गीतार्थ हुए। प्रशासन-कौशल था ही। आचार्य ने अपने उत्तराधिकारी के रूप में राजर्षि की नियुक्ति की। राजर्षि ने आत्म-साधना करते हुए संघ को भी उस ओर विशेष प्रवृत्त किया। साध्वी आरामशोभा ने भी प्रवर्तिनी पद को अलंकृत किया। बहुत वर्षों तक संघ की प्रभावना करते हुए दोनों ने ही अनशनपूर्वक देह-त्याग किया और वे स्वर्गस्थ हुए।

●

२

आरामशोभा जातक

चम्पापुरी मे कुलधर श्रेष्ठी रहता था। वह बहुत धनाढ्य था। उसकी पत्नी का नाम कुलानन्दा था। श्रेष्ठी के--१ कमल श्री, २ कमलावती, ३ कमला, ४ लक्ष्मी, ५ सरस्वती, ६ जयमती, ७ प्रियकारिणी, सात कन्याये थी। सातो ही सौ दय व कला में अग्रणी थी। सातों का विवाह कुलीन वणिक् पुत्रों के साथ हुआ। आठवी कन्या ने भी श्रेष्ठी के घर जन्म लिया। वह भाग्य-हीना थी। माता-पिता को उसके जन्म से बहुत दु ख हुआ। उन्होंने उसका नामकरण सस्कार भी नहीं किया। कन्या क्रमश बडी हुई। किशोरावस्था से उसने यौवन में प्रवेश किया। श्रेष्ठी उसके भविष्य की सुखद कल्पनाओ से उदासीन था। विवाह की व्यवस्था करने को उसका मन प्रोत्साहित नही हो रहा था। पारिवारिक जन श्रेष्ठी का इस ओर ध्यान आकर्षित करते, तो वह यह कह कर वात टाल देता, योग्य वर मिलने पर इसका विवाह करूगा। वर की

खोज में हू ।

श्रेष्ठी कुलधर एक दिन दुकान पर बैठा था। एक विदेशी युवक श्रेष्ठी के पास आया। उसके वस्त्र मलिन थे, केश बिखरे हुए थे और वस्त्र व केश जूओं से सने हुए थे। सेठ ने उससे पूछा—"तू कौन है ? कहां से आया है ? तेरा निवास-स्थान कहा है ?"

युवक ने उत्तर दिया—"मेरा ग्राम कोशलापुर है। मेरे पिता का नाम नन्दी और माता का नाम सोमा है। मेरा नाम नन्दन है। मैं निर्धन हू। व्यापार के लिए चौड देश गया था। वहा भी निर्धनता ने मेरा पीछा नही छोडा। वही चौड देश मे इस नगर का निवासी वसन्त देव नामक एक व्यापारी रहता है। मैं उसी के पास नौकरी करता हू। उसने मुझे अपने घर पत्र देकर भेजा है। मैं उसके घर जाना चाहता हूं। घर से मैं अनजान हूं। आप मुझे उस श्रेष्ठी का घर बतला सकें, तो कृपा होगी।"

श्रेष्ठी कुलधर ने सोचा, मेरी पुत्री के लिए यही वर योग्य रहेगा। इसके साथ यदि उसका विवाह कर दू, तो सदा के लिए ही मेरा उससे पिण्ड छूट जाएगा। श्रेष्ठी ने उसे कहा—"महाभाग ! वसन्तदेव के घर पत्र देकर तुम इसी समय लौट आना।" श्रेष्ठी ने

अपना अनुचर उसके साथ भेजा । युवक ने पत्र यथा-स्थान पहुंचा दिया और श्रेष्ठी कुलधर के पास चला आया । श्रेष्ठी ने उसे स्नान कराया, नये वस्त्र पहनाए और भोजन कराया । उचित प्रसग देखकर श्रेष्ठी ने अपना प्रस्ताव रखा । युवक ने कहा—"मुझे तो आज ही लौट जाना है ।" श्रेष्ठी ने कहा—"इसमें किसी प्रकार की असुविधा नही हो सकेगी । मैं सारी व्यव-स्थाए समुचित प्रकार से कर दूगा । विवाह में अधिक समय नही लगेगा । आजीविका के लिए धन की व्यवस्था पीछे से कर दूंगा ।" युवक ने इसे स्वीकार कर लिया । कुछ ही घण्टो में विवाह हो गया और कन्या की विदाई भी हो गई । युवक ने नव परिणीता के साथ चौड देश की ओर प्रस्थान कर दिया । युवक चलता हुआ अवन्ती देश के समीप पहुचा । देव-मन्दिर में रात को दोनों सो रहे थे । युवक के मन में आया, पत्नी के साथ होने से बहुत थोडा चला जाता है । इस प्रकार चलते हुए मार्ग में समय बहुत लगेगा । पाथेय थोडा है, अत शीघ्र ही खूट जाएगा । मुझे भीख मागने के लिए विवश होना पडेगा । यह मेरे लिए उचित नहीं है । क्यो न मैं इसे सोती हुई को यही छोड कर प्रयाण कर दू । सम्भावित सकट से स्वत

बच जाऊगा। उसने विचार को क्रियान्वित कर दिया। अवशिष्ट पाथेय को उठाया और चुपके-से चल पडा।

सूर्योदय होने पर वह जगी। पति और पाथेय उसे दिखाई नही दिया। उसने तत्काल जान लिया, पति मुझे जान-बूझकर ही छोड गया है। जिस व्यक्ति को मैंने जीवन समर्पित किया था, वह मेरे साथ इतना विश्वासघात करेगा, यह कल्पना भी नही थी। किन्तु, असम्भावित भी हो चुका है। वह अपने भविष्य का चिन्तन करने लगी। एक बार उसके मन मे आया, पिता के घर चले जाना चाहिए। किन्तु, दूसरे ही क्षण उसने सोचा, पिता के घर पर पहले भी आदर नही था। यदि अब जाऊगी, तो और अधिक तिरस्कृत होना होगा। तिरस्कार का घूंट पीने के बनिस्वत कष्टों का गरल पीना सुगम है। उसने निश्चय किया, मै वहां नही जाऊगी। अगले क्षणो मे उसके मन मे आया, मेरा शरण कौन होगा? क्या मै भीख मांगकर जीवन के बचे हुए दिन व्यतीत करूगी? यह भी मेरे स्वाभिमान के विरुद्ध है। मेरा पुरुपार्थ और साहस मेरा मार्ग आलोकित करेंगे। ससार मे सभी प्राणी स्वाभिमान से जीते है, तो मुझे भी वैसा ही अधिकार है। कुछ काम करूंगी और अपना भरण-पोपण करूगी। अपने

सत्य और सतीत्व की रक्षा करूगी ।

साहसी सदैव पाता ही है । वह खोता कुछ भी नही है । श्रेष्ठि कन्या वहा से उठी और सम्भल कर एक दिशा में चल पडी । वह विशाला नगरी मे पहुची । बाजार में घूम रही थी । श्रेष्ठी मणिभद्र अपनी दुकान पर बैठा था । उसने कन्या को देखा और कन्या ने उसे देखा । कन्या ने उसे भद्र पुरुष समझा । वह उसके पास चली आई । उसने कहा—"पिताजी ! मैं कुछ काम चाहती हू । यदि आप दे सकें, कृपा होगी ।"

श्रेष्ठी मणिभद्र की उसके प्रति ममता जगी, किन्तु, एक अनजान महिला को वह अपने घर में कैसे रख सकता था ! उसने उसका परिचय जानना चाहा । श्रेष्ठि पुत्री ने कहा—"चम्पा के निवासी श्रेष्ठी कुल-धर की मैं पुत्री हू । अपने पति के साथ मैं चौड देश की ओर जा रही थी । सयोगवश मै साथ से बिछुड गई । आपके पास आई हू और कोई काम चाहती हू, जिससे मेरे दु ख के लम्बे दिन सुगमता से कट सकें ।"

मणिभद्र ने उसे आश्वस्त किया और वात्सल्य प्रदान किया । साथ ही उसने उसे अपने घर रहने के लिए भी निमन्त्रण दिया । कन्या ने उसे स्वीकार कर लिया । वह सेठ के घर रहती और घर के कार्यों को

वह सेठ के पास चली आई। उसने कहा —"पिताजी! मैं कुछ काम चाहती हूं। यदि आप दे सकें, तो कृपा होगी।"

व्यवस्थित रूप से सम्पादित करती। श्रेष्ठी मणिभद्र ने अपने अनुचरों को भेजकर साथ की खोज कराई, किन्तु कही पर भी उसका पता नही चला। उसने अपने विश्वस्त व्यक्तियो को कुलधर श्रेष्ठी के पास भी भेजा। उन्होने परोक्ष रूप से सारी स्थिति का पता लगाया। कन्या ने जो उसे बताया था, वह उन्हाने सही-सही पाया। श्रेष्ठी मणिभद्र विश्वस्त हो गया। उसके सारे सन्देह दूर हो गए। मणिभद्र ने उसे कुलधर को कन्या समझकर उसका विशेष आदर किया। कन्या ने भी अपनी वाक् चातुरी और काय कुशलता से सभी पारिवारिको का स्नेह प्राप्त किया। उसके जीवन में सुख के बादल उमडने घुमडने लगे।

श्रेष्ठी मणिभद्र द्वारा समुन्नत तोरण-ध्वजाओ से अलकृत एक जिन-मन्दिर निर्मित था। कुलधर पुत्री प्रतिदिन वहाँ जाती और सभक्ति भगवत्-पूजा करती। उसे साध्वियो के सम्पर्क का भी सुयोग मिला। उसने जीव अजीव आदि नव तत्वो का ज्ञान प्राप्त किया और सुलसा की तरह विशुद्ध सम्यक्त्व सम्पन्न दृढ श्राविका हो गई। श्रेष्ठी मणिभद्र भी उसके विचारों का विशेष समादर करता था। उसकी कोई भी भावना क्रियान्वित हुए बिना नही रहती थी। एक

बार उसने जिन-प्रतिमा पर स्वर्ण-रत्नमय तीन छत्र उपहृत करने चाहे। श्रेष्ठी ने उसकी भावना पूर्ण की। कुलधर-पुत्री का अधिकांश समय तपस्या, सघ-वात्सल्य, उद्यापन आदि धार्मिक कामो में ही बीतने लगा।

एक दिन मणिभद्र चिन्तातुर बैठा था। कुलधर-पुत्री को जब यह ज्ञात हुआ, वह उसके पास आई और उसने चिन्तित होने का कारण पूछा। मणिभद्र ने वस्तुस्थिति बताते हुए उसे कहा—"देव-पूजन के लिए राजा ने मुझे एक पुष्पित उद्यान दिया था। उसी उद्यान से प्रतिदिन पुष्प आदि सामग्री का चयन कर मै देव-पूजा करता था। आज वह उद्यान सहसा सूख गया है। उसे पल्लवित करने के लिए मैंने अनेक प्रयत्न किए, किन्तु, सफलता नही मिली। मालूम नही, राजा इस बारे मे क्या कठोर कदम उठायेगा?"

कुलधर-पुत्री ने आत्म-विश्वास के साथ कहा—"पिताजी! आप चिन्ता-मुक्त हों। यह कार्य तो मै कर दूँगी। मेरा सतीत्व अखण्ड है। जब तक यह उद्यान पुन पल्लवित नहीं हो जाएगा, मैं चारो प्रकार के आहार का परित्याग करती हूं।"

श्रेष्ठी मणिभद्र ने उसका प्रतिवाद करते हुए कहा—"तुम ऐसी उग्र प्रतिज्ञा न करो। मेरी चिन्ता

को इस प्रकार अपने पर ओट कर मुझे लज्जित न करो।"

कुलधर-पुत्री ने दृढतापूर्वक कहा—"की हुई प्रतिज्ञा कभी अन्यथा नही होती है। आप मेरी चिन्ता न करें। आत्म-बल के समक्ष विरोधी शक्तियों को पराजित होना पडेगा।"

कुलधर-पुत्री जिन-मन्दिर में आई। भगवान को नमस्कार कर एकाग्र मन से कार्योत्सग में लीन हो गई। न आहार था और न पानी। एक दिन बीता, दूसरा दिन बीता और तीसरा दिन भी बीत गया। तीसरी रात में शासनदेवी प्रकट हुई। उसने सारी वस्तुस्थिति को बतलाते हुए कहा—"बेटी! मिथ्या-दृष्टि देव ने इस उद्यान का विनाश किया है। वह देव तेरे सतीत्व के समक्ष ठहर नही सका है, अत प्रात-काल यह उद्यान पुन पल्लवित हो जाएगा। तुम्हारी प्रतिज्ञा अब पूण होती है।"

प्रात काल उद्यान पल्लवित हो गया। श्रेष्ठी मणिभद्र उसे देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ। वह कुलधर पुत्री के पास आया और उसे इसकी सूचना दी। मणिभद्र श्रेष्ठी ने कहा—"तेरे सतीत्व के प्रभाव से मेरे सारे मनोरथ पूण हो चुके है। तू अब पारणा

कर।"

सारे शहर मे भी यह सम्वाद विद्युत् की तरह फैल गया। श्रावक-श्राविका सघ भी वहां एकत्रित हो गया। सभी उसके सतीत्व की मुक्त-कण्ठ से प्रशसा कर रहे थे। साथ ही श्रेष्ठी के भाग्य की भी सराहना की, जिसके यहा ऐसी कन्या निवास करती है। कुलधर-पुत्री ने साधुओ को आहार-दान दिया, सघ को भोजन कराया और स्वय पारणा किया। जैन-धर्म की इस अवसर पर विशेष प्रभावना हुई।

कुलधर-पुत्री एक बार पश्चिम रात्रि में जाग रही थी। उसका चिन्तन उभरा, सौभाग्य से मुझे जैन-धर्म प्राप्त हुआ है। मै महाव्रत साधना नही कर सकती हूं। यह मेरी असमर्थता है। यथासम्भव साधना में मुझे अपनी शक्ति का पूरा उपयोग करना चाहिए। उसने तपस्या आरम्भ की। कभी वह बेला करती, कभी तेला करती, तो कभी चोला करती। तपस्या में वृद्धि करते हुए वह पखवाड़ा व मासखमण भी करने लगी। क्रमशः उसका शरीर क्षीण हो गया। अन्तिम समय में उसने अनशन किया। शुभ ध्यान में आयु शेष कर वह सौधर्म देवलोक में देव हुई। वहां से आयु पूर्ण कर अग्निशर्मा के घर विद्युत्प्रभा कन्या हुई।

श्रेष्ठी मणिभद्र भी धम-प्रवण हुआ। उसका अधिकाश समय धार्मिक कार्यों में ही बीतता। वहा से जब उसका आयुष्य समाप्त हुआ, सौधर्म देवलोक में देव हुआ। वहा से च्यव कर वह श्रावक-कुल में उत्पन्न हुआ। वहा भी धर्मानुष्ठान किया। आयु शेष होने पर नागकुमार देव हुआ। उसी नागकुमार देव ने अवधि-ज्ञान से जब यह सब वृत्त जाना, तो मोहवश वह विद्युत्प्रभा के पास आया और अपना वात्सल्य प्रदर्शित किया। अज्ञान-अवस्था में जो पाप अर्जित किए थे, उनके कारण कुलधर श्रेष्ठी के घर दु:ख भोगने पडे। पश्चाद्वर्ती जीवन में धर्मानुष्ठान किया था, उसके कारण मणिभद्र श्रेष्ठी का सान्निध्य प्राप्त हुआ और दु:ख में सुख का उद्रेक हुआ। तीर्थंकर पूजा की गई, अत सुर प्रदत्त उद्यान पृष्ठवर्ती हुआ। जिन-प्रतिमा पर तीन छात्र उपहृत किए थे, अत सवदा छाया में ही रही।

●

. ३

हरिबल

वसन्तसेन कचनपुर का राजा था। उसकी अग्रम-हिषी का नाम वसन्तसेना था। लम्बी प्रतीक्षा के बाद उनके एक पुत्री हुई, जिसका नाम वसन्तश्री रखा गया। वसन्तश्री मे लावण्य व चातुर्य का अद्भुत मिश्रण था। क्रमश वह शैशव की देहली को पारकर यौवन के प्रागण मे प्रविष्ट हुई। राजा और रानी उसके विवाह की तैयारी मे सलग्न हुए।

उसी नगर मे हरिबल नामक एक धीवर रहता था। वह अत्यन्त सरल, भद्र व कर्त्तव्यपरायण था। गरीबी मे भी सन्तुष्ट था। वह प्रतिदिन कठोर श्रम करता और उससे जो कुछ मिल जाता, उससे अपनी आजीविका चलाता। उसकी पत्नी का नाम प्रचण्डा था। वह अत्यन्त कुरूप, बोलने मे कर्कश और व्यव-हार में कठोर थी। हरिबल उससे बहुत डरता था। उससे उसे तनिक भी सुख नही मिलता था।

नदी के तट पर एक दिन हरिबल मछलिया पक-

डने के लिए पहुचा । उसी मार्ग से एक मुनि का आगमन हुआ । हरिवल का सिर श्रद्धा से सहसा झुक गया । मुनि ने आशीर्वाद दिया और उसे हिंसा-रत देखकर सहज ही में पूछ लिया—"बन्धुवर ! कभी कुछ धर्माचरण भी करता है या नही ?" हरिवल विनम्रता के साथ बोला—"मुने ! मैं तो अपने कुलाचार को ही धर्म मानता हू और उसे निष्ठापूवक निभाए जा रहा हू । प्रतिदिन इस तट पर आता हू और जाल फैलाता हू । जितनी भी मछलिया इसमें फस जाए, उन पर अपना पूरा अधिकार मानता हू । इसके अतिरिक्त मेरे लिए धम का अन्य कोई प्रकार भी है, यह मै नही मानता ।"

मुनि के चेहरे पर सहज सौम्यता थी । वाणी मे मधुरता थी और नेत्रो से समता-रस टपक रहा था । उन्होने कहा—'धीवर ! कुलाचार ही धम नही हुआ करता । विभिन्न व्यक्तियों के लिए उसके तो विभिन्न रूप होते है । धर्म अहिंसा-प्रधान होता है । जिस प्रवत्ति से अहिसा पुष्ट होती है वह धम है और उसके अतिरिक्त पाप । प्रत्येक प्राणी जीना चाहता है । सभी को अपना जीवन प्रिय है । किसी को मत सताओ, दुःख न दो, परिताप न उपजाओ । हरिबल ! जिसे तू कुल-

धर्म समझकर कर रहा है, वह तो सर्वथा पापमय है। तुझे अपनी आत्मा की ओर भी देखना चाहिए।" मुनिवर के उपदेश ने हरिवल के अन्त करण मे एक उद्वेलन पैदा कर दिया। उसके चिन्तन को उत्तेजन मिला और भावना की परत मे छुपा हुआ अध्यात्म का बीज अकुरित हो उठा। वह सिहरन के साथ कुछ क्षण अपने मे ही कुनमुनाया। सहसा उसके मुख से भय-मिश्रित ध्वनि निकली—"महामुने! मुझे किसी तरह बचाओ। मै हिमा के कामो मे आकण्ठ-मग्न हूं। उनसे किसी भी रूप मे मै उपरत हो सकू, ऐसा सभव नही है। किन्तु, आप मुझे कोई मार्ग सुझाए।"

हरिवल की ओर मुनि ने एक क्षण झाका। उसके चेहरे पर करुणा आकार ले रही थी। मुनि चाहते थे, हरिबल हिसा से सर्वथा पराङ्मुख हो जाए, किन्तु, यह उसकी विवशता थी। मुनिवर ने उसे भेद डाला। उन्होने कहा—"धीवर! तेरे जाल मे आने वाले पहले जीव को तुझे अभयदान देना है, उसे नही मारना है। यह तो तेरे लिए बहुत सहज है न?" हरिबल ने एक क्षण सोचा, अपने आत्म-साहस को बटोरा और हाथ जोडकर बोला—"मुनिवर! आप द्वारा निर्दिष्ट मार्ग मुझे स्वीकार है। आज से मैं अपने जाल में आने वाले

पहले जीव को कभी नही मारूगा।" मुनिवर अपनी मजिल की ओर आगे बढ गए और हरिवल अपने काम मे तत्पर हो गया।

अध्यात्म का अणु जब अपना शक्ति-विस्तार करता है, तब वह नि स्सीम हो जाता है और समग्र पापो को धो डालने का निमित्त भी बन जाता है। हरिवल ने नदी मे अपना जाल डाला। जब उसका उसने प्रत्यावर्तन किया, तब वह काफी भारी लगा। वह खुशी के मारे झूम उठा। उसने देखा, एक बहुत बडा मत्स्य आज उसके हाथ लगा है। उसी समय उसे अपने नियम की स्मति हुई। उसने लोभ का सवरण किया और उस मत्स्य के गले में एक कोडी बाधकर उसे नदी की धारा में विसर्जित कर दिया। हरिवल ने दूसरी वार जाल फेंका। सयोग से वही मत्स्य जाल में आया। जब कौडी बधे उस मत्स्य को हरिवल ने देखा, तो अपने नियम की स्मति कर उसे जलधारा में प्रवाहित कर दिया। वार-बार जाल डाला गया। सयोगवश उस मत्स्य के अतिरिक्त जाल में और कोई छोटा-बडा मत्स्य नहीं आया। दोपहर की चिलचिलाती धूप मे हरिवल परेशान हो गया, किन्तु, नियम से पराङ्मुख होकर कुछ भी करने के लिए वह तत्पर न

हुआ। उसने स्थान बदला और जाल फेंका। साथ ही उस मत्स्य ने भी स्थान बदल लिया। उस मत्स्य के अतिरिक्त वहा भी कोई प्राणी नही आया। कई स्थान बदल लेने पर भी हरिबल कोरा ही रहा। सूर्य ढल चुकने तक उसे उस दिन की रोटी नसीब न हुई। फिर भी ग्रहण किए हुए अपने सकल्प के प्रति उसे तनिक भी पश्चात्ताप नही हुआ। वह बार-बार जाल फेंकता और वही मत्स्य उसमे आता। हरिबल उसे सम्भालकर पुन नदी की धारा मे विसर्जित कर देता।

छोटा-सा व्रत भी कभी बहुत कठिन हो जाता है। किन्तु, पालक की दृढता उस कठिनता को सहज कर देती है। हरिबल की गृहीत व्रत के प्रति दृढता देखकर वह मत्स्य मनुष्य की भाषा मे बोला—"धर्मात्मन् ! मै तेरी व्रत-निष्ठा का हृदय से स्वागत करता हू। तूने व्रत-पालन में अपनी रोटी-रोजी की भी परवाह नही की। यह तेरा अद्भुत साहस है। मैं तुझे वरदान देना चाहता हू। तू कुछ माग।" हरिबल ने सविस्मय कहा—"तू मत्स्य मुझे क्या दे सकेगा ? मनुष्य और मत्स्य मे कौन किस पर उपकार कर सकता है, क्या तू नही जानता ?"

मत्स्य ने अपनी स्वाभाविक भाषा मे उत्तर दिया--

"महाभाग ! तू मेरे मे मत्स्य का रूप ही क्यों देख रहा है। मैं इस रूप में लवण समुद्र का अधिष्ठायक देव हू। व्रत-पालन में तेरी दृढता देखने के लिए मैं यहा आया था। मुझे प्रसन्नता है कि मेरी परीक्षा में तू खरा उतरा है। बहुत सारे व्यक्ति व्रत ग्रहण करते ही नही। कुछ व्रत-ग्रहण कर उन्हें यथावत् निभाते नही। तेरे जैसे व्रत निष्ठ अत्यन्त थोडे होते है। मैं हार्दिक प्रसन्नता के साथ तुझे वरदान मागने के लिए पुन आह्वान करता हू। तेरे जैसे व्यक्तियो को मैं अपनी ओर से कुछ सतकृत कर सकू, यह मेरे लिए स्वर्णिम है।"

व्रत-निष्ठा का तात्कालिक प्रभाव देखकर हरिबल बहुत हर्षित हुआ। उसने चिन्तनपूर्वक कहा—"महा-भाग ! आपकी इस दयालुता का मैं आभारी हू और याचना करता हू कि जब-जब आपत्तिया मुझे घर दबोचें, तब-तब आप मुझे उनसे उबारे।"

सध्या का समय हो चुका था, पर, खाली हाथ लौटने मे हरिबल को प्रचण्डा का भय सता रहा था। वह घर नही लौटा। एक देवालय के कोने में जाकर लेट गया और अपने ही चिन्तन में लीन हो गया। वह सोचने लगा, मैंने केवल व्रत का एक अश ग्रहण किया, फिर भी उसका सुन्दर परिणाम निकला। जो

व्यक्ति अहिंसा का पूर्णत. पालन करते हैं, वे तो कितने भाग्यशाली होंगे।

० ० ०

घटना-चक्र जब नया मोड लेता है, तब अप्रत्याशित कुछ भी नही रहता। अवरोह आरोह मे बदलते समय नही लगता। वसन्तश्री एक दिन अपने महल के गवाक्ष में बैठी शहर की चहल-पहल देख रही थी। दूर से आते हुए हरिवल नामक एक सुडौल व सुन्दर युवक व्यापारी को उसने देखा। वह उसकी ओर विशेष आकर्षित हुई। उसने तत्काल एक पत्र लिखा और जब वह युवक महल के नीचे से गुजरा, तो उसके आगे गिरा दिया। हरिवल ने पत्र पढ़ा और ऊपर देखा। दोनो की आखे मिली और पत्र मे लिखे अनुसार यह निर्णीत हुआ कि कृष्ण चतुर्दशी को देव-मदिर में रात को दोनो को मिलना है तथा किसी अज्ञात स्थान की ओर चले जाना है।

कृष्ण चतुर्दशी उसी दिन थी, जिस दिन हरिवल धीवर भी देव-मदिर के एक कोने में लेट रहा था। वसन्तश्री देव-दर्शन के बहाने विभिन्न रत्न, आभूषण, वस्त्र आदि विशिष्ट सामग्री के साथ रथ पर सवार होकर वहां पहुची। उस दिन व्यापारी युवक हरिवल

के मन में आया, मुझे रात को देव-मदिर में नही जाना चाहिए। स्त्री-जाति के द्वारा प्रच्छन्न काय बहुत होते है। उनका परिणाम सुन्दर नही निकलता। रात का समय है। एक बार का दृष्टि-मेल कही अनथ का कारण न बन जाए। यदि मैं वहा जाता हू, तो सुन्दर परिणाम होगा या नहीं, यह तो असदिग्ध है, किन्तु, वर्तमान में एक अपराध तो अवश्य हो जाएगा। मेरे लिए यह श्रेयस्कर नही है। वह मन्दिर नही पहुचा। वसन्तश्री पहुच चुकी थी। चारों ओर अधेरा था। उसने पहुचते ही आवाज दी—हरिबल ! हरिबल ! कुछ क्षण पूणत स्तब्धता छाई रही। राजकुमारी ने पुन पुकारा। एक कोने में लेटे हुए धीवर हरिबल ने उसे सुना तो अपना ही नाम समझकर उसने अपने वहा होने की दूर से ही सूचना दी। राजकुमारी ने तत्काल कहा—"प्रियवर ! शीघ्रता से सज्ज होकर आए। हमें बहुत दूर प्रदेश जाना है।"

धीवर हरिबल को समझते देर न लगी कि इसी नाम का कोई दूसरा व्यक्ति यहा पहुचने वाला होगा। उसके न आने से और मेरे बोलने पर मै ही वह समझ लिया गया हू, किन्तु इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है। वह तत्काल उठा और राजकुमारी के सम्मुख उप-

स्थित हो गया । कन्या ने उसे रथ में बिठाया और तत्काल रथ दौडा दिया । मछलियो को पकडने का उसका जाल भी वही छूट गया । कुछ दूर जाने पर राजकुमारी ने उसे गौर से देखा । उसके शरीर पर पूरे कपडे भी नही थे; अत. उसे आशका हुई और उसने उससे पूछ ही लिया —क्यो, प्रियवर ! आपके वस्त्र, आभूषण आदि कहा गए ? रात के समय क्या किसी ने उन्हे छीन लिया है ? हरिबल ने अपनी चातुरी से 'हु' के अतिरिक्त कुछ भी नही कहा । राजकुमारी ने तत्काल आश्वस्त करते हुए कहा—"प्राणेश ! आपको इसकी तनिक भी चिन्ता नही करनी चाहिए । मेरे पास वहुत बहुमूल्य सामग्री है ।" उसने हरिबल को तत्काल वस्त्र और आभूण दिए । उसने उन्हे ले लिया और पहन लिया । राजकुमारी ने बात को आगे वढाया । विनोद के बहुत सारे प्रसग चलाए, किन्तु, हरिवल ने फिर भी 'हु' के अतिरिक्त कुछ भी नही कहा । राजकुमारी को सन्देह हुआ । उसके मस्तिष्क में नाना प्रश्न उठने लगे । कभी वह सोचती, क्या यह इतना अभिमानी है ? कभी उसे लगता क्या यह मेरी बाते समझता ही नही है ? कभी उसे अपनी ही गल्ती का अहसास होता और अपने ही मन से कहने लगती—

क्या यह मेरे पर क्रुद्ध हुआ है ? यह मेरी ओर देखता भी क्यों नही है ? उसके मन में प्रतिकूल विचारो का ज्वार आ गया । उसे स्पष्टता से लगने लगा कि उसके साथ धोखा हो गया है । यह हरिबल वह नहो है । ज्यो ही कुछ दूर आर चले, त्यो ही पौ फटी और कुछ उजाला हुआ । वसन्तश्री ने हरिबल को निकटता से ध्यानपूवक देखा । उसके पावो तले की भूमि खिसक गई । उसने अपने भाग्य को तीन बार धिक्कारा । उसे अब अपनी स्वच्छन्दता पर अतिशय पश्चात्ताप और ग्लानि हुई । उसे रह रह कर माता-पिता, राज-वैभव व ऐश्वय की स्मृति कचोटने लगी, सुबक सुबक कर वह रोने लगी और मूर्च्छा खाकर धरा पर गिर पडी । जब जब शीतल-पवन का स्पश होता वह होश में आती और तभी वह चिहुक उठती । अनालोचित इस वेदना ने उसे लील लिया ।

हरिबल ने वसन्तश्री के दिल पर होने वाली प्रतिक्रियाओं को पढ़ा । उसे निराशा हुई । दोनों का साथ हो सकेगा और निभ सकेगा, इसमें उसे स्पष्ट सन्देह होने लगा । किन्तु, उसका तो एक ही सहारा था । उस समय उसके मन में आया, इस समय यदि वह देव कुछ सहयोग करे, तो इसके विचारों मे परि-

वर्तन हो सकता है । अन्य कोई मार्ग नही है । दूसरी ओर राजकुमारी जब थोडी आश्वस्त तो हुई, उसके भी विचारों में परिवर्तन आया और मन-ही-मन कुनमुनाने लगी—इस घटना का दोष अब किसी के भी सिर पर नही मढा जा सकता । मैंने अपने ही हाथों यह अपनी चिता सजाई है । भाग्य ने यदि साथ दिया, तो जीवन स्वर्ग भी बन सकता है । विगत के अनुताप की भट्ठी में वर्तमान को झोंकने का दु साहस क्यों करूं ? मुझे वर्तमान को पकड़ना और भविष्य को आलोकित करने का प्रयत्न करना है । कभी-कभी जिसे मिट्टी समझा जाता है, उसमें अतिशय स्वर्ण-कण भी मिश्रित हो सकते है । यह चुनाव मैंने स्वय किया है और अव भाग्य की तुला पर स्वयं मुझे ही उसे तोलना है।

निर्लक्ष्य छोडा गया बाण यदि अप्रत्याशित वेध कर डालता है, तो विषाद अत्यन्त हर्ष में बदल जाता है । राजकुमारी ने अपनी अलसाई आंखो का उन्मेष किया । उसके हृदय में हरिवल के कुल, व्यवसाय, आवास तथा जीवन के बारे मे नाना जिज्ञासाएं थी, किन्तु, उसी समय आकाशवाणी हुई और उसने उसकी सारी जिज्ञासाएं समाहित कर दी । उस वाणी मे कहा गया था—राजकुमारी ! तू भाग्यशालिनी है । नगण्य

समझकर इसकी उपेक्षा करना तेरी अज्ञता है। इस पुरुष का पूर्ण भाग्योदय होने वाला है। तेरे जीवन का साथी इससे बढ़कर और कौन हो सकेगा ?

वसन्तश्री को अपनी गलती का इस तरह प्रतिकार हो सकेगा, यह आशा नहीं थी। उसे पहले जितना विषाद हो रहा था अब उतना ही प्रसाद होने लगा। उसे लगा कि अज्ञान में भी मुझे मेरे भाग्य ने उबारा है। उसके दिल में स्नेह जागृत होने लगा। वह बार-बार हरिबल की ओर देखती और उसे पढ़ने का प्रयत्न करती। किन्तु, हरिबल अत्यन्त शान्त, गम्भीर व सौम्य बैठा था। राजकुमारी ने सकुचाते हुए याचना की—गला सूख रहा है, कुछ पानी की व्यवस्था हो सके तो ।

हरिबल तत्काल उठा और भयंकर जंगल में चला। कुछ क्षण घूमा और पानी लेकर लौट आया। राजकुमारी ने जी-भर पानी पिया। सविस्मय हरिबल की ओर एक नजर डाली। राजकुमारी अब पूर्णतः विश्वस्त हो गई कि इस समय ऐसे बीहड़ स्थान में पानी खोज लाने वाला युवक साहसी और चतुर है।

प्रातःकाल हुआ। प्राची में सूर्य की अरुण प्रभा फूटी। सर्वत्र प्रकाश निखरने लगा। वसन्तश्री ने गौर

हरिवल तत्काल उठा और भयंकर जंगल में चला। कुछ क्षण घूमा और पानी लेकर लौट आया। राजकुमारी ने जी-भर पानी पिया।

से हरिबल को एक बार और निहारा । हरिबल बाह्य आकार से अब पूर्णत बदल चुका था । उसका रूप निखर रहा था । प्रत्येक अवयव से शालीनता टपक रही थी । वसन्तश्री मन-ही-मन प्रमुदित हुई । उसने तत्काल प्रस्ताव रखा—महाभाग ! अब उपयुक्त समय है । आप मुझे स्वीकार करें । जिस अभिलाषा से मैं आपके साथ आई हू, उसे पूण करे । हरिबल यह देख-कर अत्यन्त चकित था । व्रत-पालन मे उसकी निष्ठा और दृढ हुई । उसने वसन्तश्री का प्रस्ताव स्वीकार किया । गान्धव विधि से विवाह कर प्रणय सूत्र में दोनों आबद्ध हुए ।

हरिबल और वसन्तश्री के जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ । दोनो वहा से आगे चले । छोटे-बडे नगरों, कस्बों व देहातों में भ्रमण करते हुए वे दोनों विशाला नगरी मे पहुचे । नगर-प्रवेश के साथ उन्हें एक व्यापारी मिला । हरिबल ने उससे नगर के बारे मे परिचय प्राप्त किया और अपने निवास के लिए सात मजिल का बडा और सुन्दर एक मकान किराए पर ले लिया । चार घोडे उसने और खरीद लिए । बहुत सारी दास दासिया भी उसने अपनी परिचर्या में रख ली । दोनों आनन्दपूवक वहा रहने लगे ।

निष्क्रियता से जीवन में शून्यता आती है और शक्ति का ह्रास भी होता है। ऐश्वर्य से विलास भी बढ़ता है और उसके ससीम उपयोग से जनता का उपकार भी होता है। हरिबल अपने विगत जीवन में कभी निष्क्रिय नही रहा था, इसीलिए ऐश्वर्य मिलने पर भी उसने श्रम नही छोडा। वह प्रतिदिन अपने आवास पर अभाव-ग्रस्त व्यक्तियो से मिलता, उनकी समस्याए सुनता और उन्हे समाहित करने के लिए नाना मार्ग सुझाता। समय-समय पर उन्हे आर्थिक सहयोग भी मुक्त भाव से करता। विदेशी होने पर भी उसने शीघ्र ही विशाला नगरी की जनता मे अपनी लोकप्रियता की अनूठी छाप छोड़ दी। जहां भी जन-समूह एकत्रित होता, हरिबल की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करता। उसकी लोकप्रियता और मिलनसारिता की बहुत सारी घटनाए राजा मदनवेग के पास पहुची। राजा ने उसे अपनी सभा मे आमन्त्रित कर सत्कृत किया। हरिबल प्रतिदिन राज्य-सभा मे आने लगा और शीघ्र ही राजा का अनन्य मित्र हो गया।

मैत्री को गाढ करने के उद्देश्य से राजा ने हरिबल को पत्नी के साथ एक दिन भोजन के लिए आमंत्रित किया। हरिबल पत्नी के साथ राजमहलो में

पहुचा। अपने सम्मान्य अतिथि को राजा ने स्वय भोजन परोसकर उसका सम्मान किया। राजा की दृष्टि वसन्तश्री मे अटक गई। हरिबल की प्रगाढ मैत्री की अपेक्षा वसन्तश्री के सौंदय पर राजा अधिक आसक्त हुआ। आसक्ति ने राजा के विवेक पर पानी फिरा दिया। राजा प्रतिक्षण एक ही प्रकार के अध्यवसाय में लीन रहता। उसने बहुत सारे मार्ग खोजे, पर, बुद्धि ने राजा का साथ नहीं दिया। अन्तत राजा ने प्रधानमन्त्री से परामश किया। प्रधानमन्त्री हरिबल की लोकप्रियता से डाह रखता था। उसने इसे स्वर्णिम अवसर समझा। दो-चार दिन के अनन्तर प्रधानमत्री ने राजा को सारी योजना समझा दी। वह योजना राजा को भा गई।

एक दिन राजा सभा-भवन में बैठा था। सभी सभासद उपस्थित थे। राजा ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—"मुझे शीघ्र ही राजकुमारी का विवाह करना है। इस अवसर पर देश-विदेश के बडे-बडे राजा मेरे अतिथि बनें, मैं ऐसा चाहता हू। सभी मित्र राजाओं को आमत्रित करने के लिए प्रमुख-प्रमुख सभासदों को काय सौपा जाएगा। मैं चाहता हू कि इस अवसर पर लका के राजा विभीषण भी सपरिवार मेरा आतिथ्य

स्वीकार करे । लका जाकर उन्हे ससम्मान आमन्त्रित करना है । सभी सभासदो से मै पूछना चाहता हू, इस महत्वपूर्ण और कठिन कार्य को सम्पन्न करने का दायित्व कौन सम्भालेगा ।" सभा मे चारो ओर सन्नाटा छा गया । उपस्थित सभी सदस्य एक-दूसरे की बगले ताकने लगे । किसी ने भी उस आदेश को शिरोधार्य नही किया । राजा को उससे कृत्रिम चोट पहुची । प्रधानमन्त्री ने स्थिति को सभालते हुए कहा—राजन् ! आप पुण्यशाली है । आपकी सभा मे सब तरह के व्यक्ति है, जो आपके कठिनतम आदेश को भी क्रियान्वित कर सके । लका जाकर महाराजा विभीषण को आमन्त्रित करना बहुत कठिन कार्य है, किन्तु, आपकी सभा मे इस कार्य को सुगमता से करने वाले व्यक्ति भी उपस्थित है । प्रधानमन्त्री ने सभा मे चारो ओर देखा और कहा— "हरिबल इस कार्य के लिए सर्वथा उपयुक्त है । इन्हे छोडकर और कोई इस कार्य को नही कर सकेगा ? हरिबल बहुत साहसी, चतुर और तेजस्वी है ।"

राजा ने हरिबल की ओर देखा । हरिबल अपनी प्रशसा से दब गया था; अत न चाहते हुए भी उस आदेश को उसे शिरोधार्य करना पडा । राजा को बहुत हर्ष हुआ । हरिबल ने घर आकर वसन्तश्री को

सारा उदन्त कहा । । उसने तत्काल ही सारी स्थिति को भापते हुए कहा—"स्वामिन् ! आप छले गए है । इसके पीछे प्रपच है । राजा के विचार मलिन है। जिस दिन भोजन के लिए हम उसके घर गए थे, उस दिन से ही उसकी दुश्चेष्टाए चल रही है । इस काम के वहाने आपको प्रेत्य-धाम का अतिथि बनाकर वह मुझे हडपना चाहता है । अच्छा हो, आप किसी भी तरह इस काय से निकल जाए ।'

हरिबल का स्वाभिमान चमक उठा । वह बोला—"प्राण जा सकते हैं, किन्तु, ग्रहण किए हुए दायित्व से मैं कभी नही मुकर सकता । मुझे यह काय अवश्य करना है । परिणाम तो भावी के अधीन है, किन्तु, प्रयत्न मेरे अधीन है। कुछ नि श्वास फेंकते हुए उसने कहा—"मुझे अपनी इतनी चिन्ता नही है, जितनी तेरी है । मैं तुझे यहां अकेली छोडकर जाऊगा, तो पीछे से क्या होगा ?"

बसन्तश्री का अह भी जागृत हुआ । उसने साहस के साथ तत्काल कहा—"स्वामिन् ! कार्य-सम्पन्न कर सकुशल आप घर लौटें । मार्ग में आपके कल्याण हो। मेरी आप तनिक भी चिन्ता न करें । मैं अपने पाति-व्रत्य की पूणतया रक्षा करूगी । राजा के सारे प्रयत्न विफल होंगे ।"

शुभ समय देखकर हरिवल ने लका के लिए दक्षिण दिशा मे प्रस्थान किया। अनेक ग्राम, नगर, देश और पर्वत, जंगल, नदी, नद पार करता हुआ वह समुद्र के तट पर पहुंचा। अगाध और अपार जल-राशि को देखकर वह एक बार स्तम्भित-सा रह गया। वहां कोई नौका भी नही थी। वाहन-विहीन और तैरने की कला मे अनभिज्ञता के कारण उसका साहस डोल गया। वसन्तश्री द्वारा राजा के विचारो का किया गया सहज अनुमान उसे अब सत्य प्रतीत होने लगा। दिग्भ्रमित-सा खड़ा-खड़ा वह वहा सोचता रहा। उसे कोई उपाय नही सूझा। स्वीकृत कार्य के न हो सकने की स्थिति में उसका मन निराशा और घृणा से भर जाना स्वभाविक था। उसे जीवन का भार अनुभव होने लगा। समुद्र में समाहित हो जाने के अतिरिक्त उसे दूसरा कोई मार्ग नही सूझा। उसने समुद्र मे छलांग भर ली।

अमा के बाद उभरने वाली उषा की आभा में विशेष अरुणता प्रतीत होती है। निराशा में पगे हरिवल को उस देव ने उबार लिया। वह उपस्थित हुआ और उसकी विपदा के बारे मे जिज्ञासा की। हरिवल ने कहा—मुझे लंका पहुंचना है। उसके लिए साधन

चाहिए । देव ने उसी समय एक बडे मत्स्य को विकु-वणा की और हरिबल को उसकी पीठ पर बैठ जाने के लिए कहा । हरिबल के लिए वह बहुत अच्छा वाहन बन गया । समुद्र की छाती को चीरता हुआ मत्स्य आगे बढा । सुखासीन हरिबल के लिए समुद्र की सुषमा के आनन्द का वह पहला दिन था । अगाध जल राशि को तैरता हुआ मत्स्य लका के तट पर पहुच गया । हरिबल के उत्साह का पार न रहा । एक असाध्य काय निमेष मात्र से ही बन जाएगा, ऐसी सुखद कल्पना किसी को भी नही थी । हरिबल ने देव का आभार माना और उसे ससम्मान विदा किया ।

हरिबल समुद्र-तट से चला और घूमता-फिरता उद्यान मे पहुचा । लका का प्रत्येक स्थल उसके लिए दर्शनीय व रमणीय था । इतने नयनाभिराम दृश्य किसी एक नगर मे लका के अतिरिक्त अन्यत्र कहा मिल सकते थे ? शहर में प्रविष्ट होकर उसने बडे-बडे सुदर आवास देखे । कुछ दूर पर ही उसने एक भव्य आवास देखा, जो ऐश्वय की पराकाष्ठा पर था, किन्तु, सुनसान व वीरान पडा था । उसे आश्चय हुआ । उसके रहस्य को जानने के लिए वह उस आवास के प्रत्येक कक्ष में घूमने लगा । सातवी मजिल के एक

कक्ष में उसने देखा कि एक युवती मूच्छित पड़ी है। वह और भी चकित हुआ। उसने उस कक्ष मे पड़ी प्रत्येक वस्तु को ध्यानपूर्वक देखा। एक तुम्बे मे अमृत भरा पड़ा था। सारे रहस्य को जानने की उत्कण्ठा से उसने युवती पर अमृत के छीटे लगाए। तत्काल वह युवती अलसाई आंखो से उठ बैठी। चारो ओर दृष्टि डाली। हरिबल को देख वह हर्षित भी हुई और कुछ शरमा भी गई। एक विदेशी व्यक्ति को असूचित ही अपने कक्ष मे पाकर जिज्ञासा सहज थी। उसने विनम्रता से पूछा और हरिबल ने अपना पूरा परिचय दिया तथा लका आने का उद्देश्य संक्षेप में उस युवती को बताया। युवती का नाम कुसुमश्री था।

युवती ने अपने बारे में हरिबल को बताया—मेरे पिता पुष्पबटुक राजा विभीषण के माली है। उनके पास धन-धान्य बहुत है, पर, विचार अच्छे नही है। मेरा सारा परिवार उनसे असंतुष्ट है। कलह यहां तक बढ चुका है कि मेरे अतिरिक्त अब उनके पास कोई नही रहता है। मैं भी रहना नही चाहती, किन्तु, मेरा दुर्भाग्य है कि इस चक्र से निकल नही पाती हू। वास्तव मे पिताजी ने मुझे ही इस विग्रह का केन्द्र बना रखा है।

हरिबल के जानने की उत्कण्ठा बढी। कुसुमश्री ने कहा—एक बार मेरे पिताजी ने एक सामुद्रिक से मेरे भविष्य के बारे में पूछा। सामुद्रिक ने कहा—"कन्या का भविष्य उज्ज्वल है। इसका पति राजा होगा।" उस दिन के बाद मै सकट मे फस गई हू। मेरे पिता राजा बनने का स्वप्न देख रहे हैं, इसलिए मेरा विवाह अन्य किसी युवक के साथ करने की सोच ही नहीं रहे है। मेरे लिए यह कितना धर्म सकट और पिताजी के लिए भी यह कितना घृणास्पद है। इसी पहलू पर परिवार के सभी सदस्यों ने उनका साथ छोड दिया है। पिताजी जब घर से बाहर जाते हैं, मुझे मूर्च्छित कर जाते है। जब घर आते हैं, इस अमृत जल से मुझे छिडकते है और मैं स्वस्थ होती हू। मेरा जीवन दु खमय है। आज आपका शुभागमन हुआ है। मैं समझती हू कि अब मुझे मुक्ति मिल जाएगी। कुसुमश्री ने अपना सारा उदन्त सुनाया और स्नेहिल दृष्टि से हरिबल की ओर देखा। दोनो की आखें मिली और निश्चय हो गया। कुसुमश्री ने विवाह का प्रस्ताव रखा और हरिबल ने उसी समय क्रियान्वित कर दिया।

कुसुमश्री ने कहा—"प्रियवर! अब यहा अधिक

रहना उपयुक्त नही है। कही पिताजी आ गए, तो अनर्थ हो जाएगा।" हरिवल ने कहा—"मै जिस उद्देश्य से आया था, वह तो अभी तक कुछ भी नही हुआ।" कुसुमश्री ने कहा—"राजा विभीषण को आमन्त्रित करना स्थगित रखे। आप यहा आ गए; अतः निमन्त्रण हो ही गया। राजा विभीषण लंका छोड़कर वहा नही आएगे। आप अपने राजा को सूचित कर दे"। कुसुमश्री राजा विभीषण का चन्द्रहास खड्ग ले आई और लंका-आगमन के चिन्ह के रूप में हरिबल को समर्पित कर दिया। दोनो ने उस आवास से सार-भूत वस्तुए व अमृत का तुम्बा लिया और वहां से चल पडे। समुद्र तट पर आए। देव उपस्थित हुआ। उसने मत्स्य का रूप बनाया और अपनी पीठ पर दोनो को बिठा लिया। मार्ग की रमणीयता देखते हुए हरिबल और कुसुमश्री दोनो विशाला नगरी के उद्यान मे पहुंच गए।

हरिबल ने जब से लका के लिए प्रस्थान किया था, वसन्तश्री को पाने के लिए राजा के दुष्प्रयत्न प्रारम्भ हो गए थे। वह प्रतिदिन अपनी दासियो को हरिबल के घर भेजता और उनके द्वारा वसन्तश्री को अपने प्रति अनुरक्त करने का प्रयत्न करता। वसन्तश्री सब कुछ समझ गई, किन्तु, प्रतिकार कर सकने की

स्थिति में वह अपने-आपको नही पा रही थी। राजा ने उस स्थिति का अनुचित लाभ उठाया। वह एक बार रात मे हरिवल के घर पहुच गया। वसन्तश्री को यह बहुत बुरा लगा, किन्तु, राजा को घर से निकाल कैसे सकती थी! उसे राजा का स्वागत भी करना पडा, पर, अपने में सावधान थी। राजा ने अवसर पाकर वसन्तश्री को अपनी ओर आकर्षित करने का असफल प्रयत्न किया। उसने सरलतावश कह भी दिया—"मैंने तेरे पति को छलपूवक लका भेजा है। वह पुन अब नही लौट सकेगा। मैं तुझे निराधार नही छोड सकता। इस आवास को छोडकर तुम राजमहल मे चलो।"

वसन्तश्री राजा के कौआ गुहार में फस गई। उसे उसका कथन बहुत अनुपयुक्त लगा, पर, वह बोल नहीं सकी। राजा ने अपना प्रयत्न फिर भी नही छोडा। वसन्तश्री सुनती गई। राजा अपने कथन में बल भरने के लिए पुन पुन हरिवल की निन्दा करता और अपने को उससे श्रेष्ठ प्रमाणित करता। वसन्तश्री ने साहस और चातुरी का परिचय दिया। वह मौन रहकर सुनती रही, किन्तु, जब राजा सीमा का अतिक्रमण करने लगा, तो वसन्तश्री का पौरुष भी फडक उठा।

उसने राजा को ललकारा और स्पष्ट शब्दों में कह दिया, कितने भी प्रयत्न क्यों न किए जाएँ, मैं अपने मार्ग से विचलित नहीं होऊँगी।

उसने राजा को ललकारा । उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—"कितने भी प्रयत्न क्यों न किए जाए, मैं अपने माग से विचलित नही होऊगी ।" राजा ने भी अपना पैंतरा बदला । जहा वह स्नेह से बात कर रहा था, वहा आक्रोश मे भर गया । उसने कडकते हुए कहा—"मेरे निर्देश के उल्लघन के परिणाम से क्या तू अनभिज्ञ है ? यदि स्नेह से तूने मेरी बात स्वीकार नहीं की, तो बल-प्रयोग करने से भी मै नही चुकूगा ।" वसन्तश्री सहमी । उसने स्थिति को सभाला और बच निकलने के लिए उसने एक प्रयोग किया । उसने कहा—"महाराज ! आप इतने अधीर क्यों होते है ? अभी आप महलों में पधारें । यदि पति देव का कोई कुशल सवाद नही मिला, तो फिर मैं आप से भेंट करूगी ।"

हरिबल अपनी नवोढा कुसुमश्री को उद्यान मे छोडकर वसन्तश्री का पता लगाने के लिए घर पहुचा । एकान्त में छुपकर उसने सारा वृत्त देखा । उसे बहुत प्रसन्नता हुई । वह प्रकट रूप में वसन्तश्री के सामने आया । हरिबल को देखते ही उसके उल्लास की सीमा नही रही । उसने राजा की दुश्चेष्टाओ का सारा ब्यौरा प्रस्तुत किया । हरिबल वसन्तश्री की प्रवृत्तियों से हर्षित हुआ और राजा की प्रवृत्तियों पर खौलने

लगा। किन्तु, प्रतिकार का यह भी अवसर नही था। लका-गमन, पुन आगमन और कुसुमश्री के साथ विवाह की घटना को सुनकर वसन्तश्री अत्यन्त हर्षित हुई। अपनी सखी के स्वागत के लिए वह तत्काल उद्यान गई। दोनो प्रगाढ प्रेम से मिली।

राजा मदनवेग के पास सवाद पहुचाया गया—राजा विभीषण को आमन्त्रित कर व उसकी कन्या के साथ विवाह कर हरिबल सकुशल अपने उद्यान मे पहुच गया है। इस अप्रत्याशित सवाद से राजा की कल्पनाओ पर पानी फिर गया। उसे एक गहरा धक्का लगा, किन्तु, व्यवहार पक्ष की ओर देखकर उसने अपने अन्त करण को व्यक्त नही होने दिया। कृत्रिम प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उपस्थित व्यक्तियो को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—"मेरा परम मित्र हरिबल असाध्य कार्य सम्पन्न कर सकुशल आज राजधानी लौट रहा है, यह मेरे लिए, जनता के लिए और देश के लिए गौरव की बात है। नगर मे सब तरह की सजावट करो और पूर्ण राजकीय सम्मान के साथ हरिबल को राजसभा में लाओ। मै भी उसकी अगवानी करूगा। कोई भी नागरिक इस कार्य मे पीछे नही रहेगा।

कुछ ही घण्टो मे राजा की उद्घोपणा शहर मे

फैल गई। हरिबल के सकुशल लौट आने के सवाद से जनता मे भी हर्ष की लहर दौड गई। राजा नागरिको के साथ उद्यान पहुचा। उसने हरिबल का स्वागत किया और राजकीय सम्मान के साथ उसे राजभवन ले आया। हरिबल की अनुमति से कुसुमश्री वसन्तश्री के साथ अमन पात्र-सहित घर पहुच गई।

परिषद् जुडी हुई थी। राजा ने प्रेमपूवक हरि-बल से पूछा—"मित्रवर! इस कठिनतम काय को तुमने किस तरह किया? आद्योपान्त घटना सुनना चाहता हू।"

हरिबल खडा हुआ और गौरव के साथ कहने लगा—"राजन्! घटना-क्रम बहुत लम्बा है, फिर भी सक्षेप मे निवेदन कर रहा हू। यहा से मैंने दक्षिण दिशा मे प्रस्थान किया। भयानक जगल व दुर्गम पवत-घाटिया लाघता हुआ मैं समुद्र-तट पर पहुचा। समुद्र की नि सीमता देखकर मन में चिन्ता हुई। उसे तैरने का मेरे पास कोई साधन नही था। कुछ चिन्तन कर ही रहा था कि एक भयकर दैत्य वीभत्स शक्ल मे मेरे पास आया। वह बहुत भूखा था। मुझे खाना चाहता था। मैंने उसके अभिप्राय को समझ लिया। नम्रता से मैंने उससे कहा—मेरा शरीर आपकी क्षुधा-

शान्ति के काम आए, यह मेरे लिए स्वर्णिम अवसर है। किन्तु, मुझे दुःख एक ही है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण किए बिना इस शरीर को छोड़ूंगा। दैत्य अकुला उठा। वह क्रोधित होकर बोला—वह कौनसी तेरी प्रतिज्ञा है ? मुझे बता। उसके पूर्ण होने में मैं तेरा सहयोग करूंगा। मुझे धीरज बँधा। मैंने आप द्वारा निर्दिष्ट काम बताया। सुनते ही दैत्य का माथा ठनका और बोला—यह काम इतना सहज नही है। इस महा-सागर को तैरना मनुष्य द्वारा सभव नही है, फिर भी मैं तुझे एक उपाय बताता हूं। मैंने हाथ जोड़कर कहा—अपने स्वामी के कार्य की निष्पत्ति के लिए जो भी बलिदान करना अपेक्षित होगा, करूंगा। लप-लपाती हुई जीभ बाहर निकालते हुए दैत्य ने कहा—इस जगल मे एक चिता जल रही है। उसमे शीघ्रता से जाकर झपापात ले ले। इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग कोई नही है। सुनते ही मैं एक बार डरा, किन्तु दूसरे ही क्षण, स्वामी के कार्य की अभिसिद्धि मे प्राणो का उत्सर्ग भी नगण्य होता है, यह सोच, मैं उस चिता मे कूद पड़ा। थोड़ी ही देर में यह शरीर जल-जलकर राख की ढेरी हो गया। उस दैत्य ने मेरी राख की एक गठरी बाधी और लका मे राजा विभीषण के

सम्मुख उसे रख दिया। राजा विभीषण ने सारी घटना पूछी। दैत्य ने सविस्तार उन्हें बताया। मेरी स्वामि-भक्ति को देखकर राजा विभीषण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तत्काल अमृत मगाया और राख की उस गठरी पर छींटे डाले। मै सजीव हो उठा। साथ ही मेरा चेहरा भी पहले से विशेष निखर गया। मैंने तत्काल राजा विभीषण को प्रणाम किया। मेरा रूप तथा कर्तृत्व-शक्ति देखकर वे मेरे पर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने मेरा बहुत स्वागत किया। उन्होंने उसी समय मेरे समक्ष अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव भी रखा। मैं वह सब कुछ देखकर दग रह गया। समय पाकर मैंने उनसे निवेदन किया—आपके अत्यन्त अनु-ग्रह के कारण जिस उद्देश्य से मैं यहा आया था, उस बारे में तो निवेदन भी नहीं कर सका। वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने मुझे एक विशेष अवसर दिया।

हरिवल ने बात को और सरस बनाते हुए कहा—स्वामिन ! आप द्वारा प्रदत्त निमन्त्रण पत्र मैंने उनके सम्मुख प्रस्तुत किया। किन्तु, ऐसा करने से पूर्व मैंने उसकी भूमिका बहुत अच्छी प्रस्तुत की। राजा विभीषण वह सब कुछ सुनकर बहुत

प्रसन्न हुए और उन्होंने तत्काल उस निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया। उन्होने कहा—"विवाह से दो दिन पूर्व मैं स्वत. वहां पहुच जाऊगा।" सभा में सर्वत्र प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए हरिबल ने कहा—"आग्रहपूर्वक उन्होने अपनी कन्या का मेरे साथ विवाह किया और अपना यह चन्द्रहास खड्ग भी मुझे विशेष रूप से दिया। जव मै इधर आने को उद्यत हुआ, तो उन्होने हम दोनो को उठाया और एक क्षण मे यहा पहुचा दिया।

हर्ष-ध्वनि से सभा-भवन गूंज उठा। सभी सभासद् हरिबल के पौरुष, चातुर्य और कर्मठता की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे। राजा ने भी उसे सत्कृत किया। प्रधानमंत्री सारा उदन्त सुनकर समझ गया, यह केवल हरिबल का वाक्-चातुर्य है। यह कन्या और खड्ग कही से छल-बल पूर्वक ले आया होगा। कृत्रिम आवरण से इसने प्रसंग को खूब सजाया-संवारा है।

प्रधानमत्री हरिबल की प्रशसा सुन नही सकता था। वह उससे अतिशय जलता था। एक दिन अवसर पाकर हरिबल के घर उसने राजा के भोजन का कार्य-

क्रम बनाया। हरिबल यह नही चाहता था, किन्तु, उसे राजा को आमन्त्रित करना पडा। निश्चित समय पर राजा प्रधानमत्री व अन्य अमात्यो के साथ हरिबल के घर पहुचा। वसन्तश्री और कुसुमश्री ने राजा और प्रधानमत्री को मनोहृत्य भोजन कराया। राजा की दबी हुई वासना पुन भभक उठी। दोनों स्त्रियों को अपने राज-महलो में बुलाने के लिए वह अकुलाने लगी।

जब अनिष्ट होने का होता है, तो एक साथ कई व्यक्तियों के विचार उलटे हो जाते है। राजा ने अपने अभीप्सित की सिद्धि के लिए प्रधानमत्री से मत्रणा की। उसने जलती अग्नि में पेट्रोल का काम किया। उसने कहा, राज्य की सारी अच्छी वस्तुओ के उपयोग का पहला अधिकार आपका है, हरिबल का नही। आप उसे आदेश करें, वह उसकी अवगणना नही कर सकता।"

राजा ने कहा—"वह मेरा परम मित्र है। उसने असम्भव काय भी सम्भव किए हैं। उसे इस प्रकार सीधा आदेश देना मेरे लिए उचित नही है।"

प्रधानमत्री ने अपनी बात को दूसरा मोड देते हुए कहा—"जिस प्रकार विभीषण को निमत्रित करने का दुरुह काय उसे सौंपा गया था, वैसा अब भी

किया जाए। सम्भव है, इस बार आपका इच्छित फल जाए।

राजा बहुत दिनो तक अन्यमनस्क रहा। एक दिन अवसर पाकर प्रधानमत्री ने दूसरा पड्यन्त्र रचा। राजा से निवेदन किया—इस बार विवाह के नाम पर राजा यमराज को निमन्त्रित करने का भार हरिबल को सौपा जाना चाहिए। राजा को यह बात भा गई। दूसरे दिन सभा मे राजा ने हरिबल की भूरि-भूरि प्रशंसा की और वह काम सौप दिया गया। हरिबल इस दायित्व को लेना नही चाहता था। उसने टालने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु, सफल नही हुआ। न चाहते हुए भी राजा के उस आदेश को स्वीकार करना पडा।

घर आकर हरिबल ने सारा वृत्त अपनी दोनो पत्नियो को सुनाया। उसके चहरे पर विषाद की गहरी छाया थी। दोनो ही पत्नियो ने परिस्थिति को तत्काल भाप लिया। हरिबल को धैर्य बंधाती हुई बोली—"आप तनिक भी विषाद न करे। यद्यपि इस बार मृत्यु के साथ खेलना होगा, किन्तु, आपके पुण्य से सब अच्छा होगा। राजा को मुह की खानी पड़ेगी। वह किसी भी स्थिति में हमारा सतीत्व भंग नही कर सकता।"

शहर के बाहर सूखी लकडियो की एक बडी चिता सजाई गई। नियत समय पर राजा पौरजनो के साथ वहा उपस्थित हुआ। हरिबल भी आया। राजा के इस काय की जनता में तीव्र आलोचना हुई। प्रत्येक को यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि निमन्त्रण के नाम पर राजा हरिबल जैसे लोकप्रिय व्यक्ति को मौत के घाट उतार रहा है। राजा और प्रधानमत्री ऐसे महान व्यक्ति को अपने देश में फूटी आखों देखना नही चाहते।

हरिबल की सवत्र प्रशसा थी। जनता उसके गुणों का स्मरण कर रही थी। कोई कहता, इसके जैसा दानी इस शहर में दूसरा नही है। दूसरा कहता, दीन-दु खी और अभाव-ग्रस्तो का यही सच्चा हितैषी है। तीसरा उसकी बुद्धि की प्रशसा करता, तो कोई उसकी कमठता, चातुरी व पौरुष का बखान करते हुए कहता, ऐसा पुरुष इस राज्य में कई शताब्दियों में भी पैदा नही हुआ। शब्द उसके महात्म्य के सामर्थ्य को अपने में अटा नहीं पा रहे थे।

हरिबल ने उसी देव का स्मरण किया। देव आया। हरिबल ने अपनी जटिल पहेली उसके समक्ष प्रस्तुत की। देव ने कहा—"तुम घर पर ही रहो। मैं

तुम्हारा रूप बनाकर चिता में छलांग भरूगा। राजा के कुत्सित विचार क्रियान्वित नही हो सकेगे।"

दुर्जन दुर्जनता से कभी बाज नही आता और सज्जन मौत को हथेली में रखकर भी अपनी सज्जनता नही छोड़ता। देव ने हरिवल के रूप में नियत समय पर छलांग भरी और धधकती चिता में कूद पड़ा। धांय-धांय अग्नि जल उठी और कुछ ही क्षणों मे वहां राख की ढेरी हो गई। राजा को उससे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसने अच्छी तरह से देखा कि हरिवल की पूर्णतया अन्त्येष्टि हो चुकी है।

रात गहरी होती गई। एक प्रहर समय बीत गया। हरिवल अपनी पत्नियों के साथ विचार-चर्चा मे लीन था। सहसा राजा भी वहां आ पहुंचा। दोनों ही पत्नियों ने हरिवल को छुपा दिया और वे स्वय राजा को सबक सिखाने के लिए प्रस्तुत हुईं। राजा ने बात आरम्भ की। उसने हरिवल का पुतला बांधते हुए कहा—"वह तो यमराज के घर पहुंच चुका है। तुम्हारा अब कोई संरक्षक नही रहा; अतः मैं आज तुम दोनो को राज-महलो में चलने के लिए निमंत्रित करने को आया हूं। तुम दोनो सौभाग्यवती हो। मैं तुम्हारा हृदय से आदर करता हूं।"

वसन्तश्री और कुसुमश्री का खून खौलने लगा। आखें लाल हो गई और राजा की भर्त्सना करती हुई बोल पड़ी—"जनता द्वारा होने वाले अन्याय का प्रतिकारक राजा होता है, "किन्तु, जब वह स्वय अन्याय पर उतारू हो जाता है, तब उसे रोकने वाला कौन होता है? आप हमारे रक्षक नही है, अपितु हमारा सर्वनाश करने पर तुले हुए है। किन्तु, हम आपकी ओर नजर उठाकर देखना भी नही चाहती। आप क्यो बार बार हमारे घर आते है?"

राजा ने अपना पक्ष प्रस्तुत करने का अनधिकृत प्रयत्न किया और वसन्तश्री और कुसुमश्री ने उसी प्रकार बार-बार राजा का अनादर किया। इतने पर भी उन्मत्त राजा सीधे रास्ते नही आया। कुसुमश्री ने अन्तिम चुनौती दी, फिर भी राजा का विवेक प्रबुद्ध नही हुआ। उसकी धृष्टता चरम सीमा पर पहुच रही थी। वह बल-प्रयोग करने के लिए आगे बढ़ा। कुसुमश्री ने फिर उसे ललकारा। वह नही रुका। कुसुमश्री ने तत्काल विद्या का स्मरण किया और उसके बल पर राजा को एक गठरी की तरह जकड़ कर बांध दिया तथा टहोका देकर औंधे मुंह गिरा दिया। गिरते ही राजा के बहुत सारे दांत

टूट गए ।

इस प्रकार कठिन बन्धन, दातो का टूटना और उससे अधिक स्त्रियो द्वारा टहोका खाकर इस प्रकार अपमानित होना, राजा के लिए भयकर वेदना-कारक था । प्रतिशोध की ज्वाला भभक उठी, किन्तु, कुछ भी करने मे वह सर्वथा असमर्थ था । चेहरे पर अतिशय दीनता छा गई । मुह से खून की धारा बह रही थी और लार टपक रही थी । दो-चार घटे तक वह उसी तरह वहा पडा रहा । जब उसका मस्तिष्क कुछ सतुलन मे आया, दोनो महिलाओ को उसकी भयावनी शक्ल पर करुणा उमड आई । भविष्य मे अनीति के मार्ग पर न चलने के लिए राजा को वचन-बद्ध कर कुसुमश्री ने बन्धन-मोचन किया ।

लज्जित राजा अपने महलो मे पहुचा । ज्यो-त्यो रात व्यतीत की और उपचार कर कुछ वेदना शान्त की । प्रात काल राजा ने प्रधानमन्त्री को सारी घटना सुनाई । सुनते ही वह तो भय से कापने लगा और करुणा से उसका हृदय भर आया । उसने भी अपना कान पकड़ा और भविष्य मे कभी ऐसा न करने का दृढ सकल्प किया ।

हरिबल ने अपनी स्त्रियो से यह सारी घटना

हरिबल ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया। राजा व सभासदों को नाना जिज्ञासाओं को समाहित करता हुआ स्वाभिमान के साथ बोला—"राजन ! ज्यों ही मैं चिता मे कूदा, मेरा वह शरीर भस्म हो गया। मैं उसी समय यमराज के दरबार में पहुच गया। सर्वप्रथम मुझे वैध्यत नामक दौवारिक मिला। वह सीधा मुझे चित्रगुप्त के पास ले गया, जिसके पास प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य-पाप का पूरा-पूरा लेखा-जोखा रहता है। असमय ही मुझे वहा देखकर वह चकित हुआ। उसने मेरा स्वागत किया और बहुत शीघ्र ही फाइल तैयार कर दी। जितनी शीघ्रता और उत्कण्ठा यमराज को मिलने की मेरे मन में थी, उतनी ही त्वरता उसने की। चण्ड और महाचण्ड नामक दो बहरो को बुलाया और उनके साथ मुझे यमराज के दरबार में पहुँचा दिया।"

बात को विशेष सरस और रोचक बनाने के लिए हरिबल ने बीच में ही कहा—"शुभ समय में शुभ शकुनों के साथ जो व्यक्ति प्रस्थान करता है, वह अपने काम में अप्रत्याशित सफलता पाता है। यही मेरे साथ हुआ। राजन् ! यमराज किसी

राजा ने तत्काल प्रश्नो की बौछार कर दी—"हरिबल ! तू किस तरह यमराज के घर पहुचा ? वहा तेरा कैसा आतिथ्य हुआ ? तूने वहा क्या क्या देखा ? यमराज ने निमन्त्रण स्वीकार किया या नही ? यह तेरे साथ कौन है ?"

हरिबल ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया। राजा व सभासदो को नाना जिज्ञासाओ को समाहित करता हुआ स्वाभिमान के साथ बोला—"राजन्! ज्यो ही मैं चिता मे कूदा, मेरा वह शरीर भस्म हो गया। मैं उसी समय यमराज के दरबार में पहुच गया। सर्व-प्रथम मुझे वैध्यत नामक दौवारिक मिला। वह सीधा मुझे चित्रगुप्त के पास ले गया, जिसके पास प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य-पाप का पूरा-पूरा लेखा जोखा रहता है। असमय ही मुझे वहा देखकर वह चकित हुआ। उसने मेरा स्वागत किया और बहुत शीघ्र ही फाइल तैयार कर दी। जितनी शीघ्रता और उत्कण्ठा यम-राज को मिलने की मेरे मन में थी, उतनी ही त्वरता उसने की। चण्ड और महाचण्ड नामक दो बहरो का बुलाया और उनके साथ मुझे यमराज के दरवार मे पहुँचा दिया।"

बात को विशेष सरस और रोचक बनाने के लिए हरिबल ने बीच मे ही कहा—"शुभ समय मे शुभ शकुनो के साथ जो व्यक्ति प्रस्थान करता है, वह अपने काम में अप्रत्याशित सफलता पाता है। यही मेरे साथ हुआ। राजन! यमराज किसी नव आगुन्तक की ओर ज्यो-त्यो वात्सल्य की नजर से नही देखते। उनकी

बडी बडी लाल आखे, चढी हुई भृकुटि, तीखे-तीखे दात, लम्बे-लम्बे घुघराले केश, अमावस्या की तरह श्याम-वर्ण, मोटा-ताजा वदन दर्शक को भयभीत कर देता है। यदि उस समय वे हुकार और कर उठते है, तो प्राणो पर ही आ बनती है। मैने जब यह सारा देखा, तो घबराया। किन्तु, पलक मारते ही यमराज की दृष्टि भी अचानक मेरे पर पडी। उस समय उनकी दृष्टि में अमृत था। वे प्रसन्न वदन थे। उनके नयन खिल रहे थे। पुरस्कार बाटने के मूड मे थे। तभी चण्ड और महाचण्ड के साथ मैंने साष्टाग प्रणाम किया। चण्ड आगे बढा और उसने मेरे से सम्बन्धित फाइल उनके चरणो मे रख दी। उसमे पहले-पहल लिखा हुआ था—हरिबल बहुत बडा स्वामि-भक्त है। अपने मालिक के कठिनतम कामो को करने के लिए प्राणों का उत्सर्ग भी नगण्य समझता है। आज भी यह अपने मालिक का एक विशेष दूत बनकर आपके दरबार मे आया है।

चित्रगुप्त द्वारा लिखे गए इस नोट को देखकर यमराज बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने मेरा आदर किया। बैठने के लिए उन्होने मुझे अपनी तेजसी राजसभा में प्रमुख सभासदो मे स्थान दिया। कुशल-क्षेम पूछा। मेरे

परिवार के बारे में, आपके और प्रधानमत्री के बारे में, देश की सुख-समृद्धि के बारे मे नाना प्रश्न पूछे। मैंने उन्हे सविस्तार रोचकता से बताया। वे मेरे पर तुष्ट हुए। उन्होंने मुझे वरदान माँगने के लिए कहा। सब तरह उपयुक्त समय समझ कर विवाह में मैंने आपके घर का आतिथ्य ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। आप बहुत सौभाग्यशाली हैं। उन्होने तत्काल उस निमत्रण को स्वीकार कर लिया और उसका श्रेय मुझे मिला। जिस समय मैं यमराज से बातचीत कर रहा था, तब ताम्रचूड दण्डधर कलम, दवात कागज आदि चारों हाथो में लिए खडा था। यमराज जो भी आदेश-निर्देश करते, सारा वहा नोट होता जाता था।

हरिबल ने उस बात को और आगे बढाया। उसने कहा—"यमराज ने मुझे अपने पारिवारिक व्यक्तियों से भी परिचय करवाया। वे सभी एक-एक करके मुझसे मिले। उस समय उनके पिता सूय, सज्ञावती माता, धूमोर्णा पटरानी, शनिश्चर भाई, यमुना बहिन आदि सभी उपस्थित थे। परिवार के इन सभी व्यक्तियों के साथ मैंने घुल-मिलकर घण्टों बातें की। यमराज ने फिर मुझे सयमनी नगरी के दर्शनीय स्थलों

का भ्रमण करवाया। थोडे समय मे मैने इतना अधिक देखा कि पूरा याद भी नही रह सका।

जब मै लौटने के लिए तैयार हुआ, तो यमराज ने फिर कहा—"तुम्हारे राजा का भाव-भीना निमत्रण है, अत मैं अवश्य आऊगा। मेरी ओर से भी तुम राजा को यहा आने के लिए प्रेरित करना। आने-जाने से मैत्री प्रगाढ होती है। विवाह से पूर्व राजा अपने प्रधानमत्री तथा अन्य विशेष अधिकारियो के साथ यहां आए, तो मेरे लिए अत्यन्त हर्ष होगा। मैं उनका रूपवती कन्याओ व दिव्य आभूषण-वस्त्रो से स्वागत करना चाहता हू।" जब मै विदा होने लगा, तो बहु-मूल्य वस्त्र व आभूषणो के साथ सैकडो अप्सराए लेने के लिए मुझे वाधित करने लगे। मै यह सब कुछ देख-कर बहुत विस्मित हुआ मैने। कर-वद्ध प्रार्थना की कि अप्सराए मै नही ले सकता। मेरे स्वामी जब यहा पधारे, आप उन्हे भेट करे। यमराज नही माने। उन्होने बहुत आग्रह किया। एक अप्सरा, जो उन सब मे अत्यधिक श्रेष्ठ थी, लेने के लिए उन्होने बहुत दबाव डाला, पर, मै उसे भी स्वीकार नही कर सका। थोडे से वस्त्र व आभूपण मैने लिए। यमराज ने मेरे साथ मार्ग वताने के लिए तथा आपको निमत्रित करने

के लिए इस दूत को भेजा है।

हरिबल का संकेत पाकर उस दूत ने भी उसी बात को बड़ी चातुरी से दोहराया और बहुत शीघ्र ही यमराज का आतिथ्य ग्रहण करने की प्रार्थना की। श्रोताओं के मन में कौतुक था। यमराज के घर का आतिथ्य ग्रहण करने, उसके ऐश्वर्य को देखने, वहां से वस्त्राभूषण प्राप्त करने, अप्सराओं के साथ विवाह करने के लिए सभी में होड़ लग गई। राजा ने सभा को निहारा। सभी सभासद् एक साथ बोल पड़े—"महाराज! आपको यह निमंत्रण अविलम्ब स्वीकार कर लेना चाहिए और पूरे परिवार के साथ पधारना चाहिए।" प्रधानमंत्री भी बहुत उत्सुक था। उसने भी सभासदों के प्रस्ताव का समर्थन किया। राजा ने आदेश दिया और नगर के बाहर भयंकर चिता सजाई गई। अग्नि की ज्वाला आकाश को छूने लगी। हजारों नागरिक, प्रधानमंत्री और राजा, सभी वहां पहुंच गए। हरिबल और दूत भी वहां आ गए। सभी यह चाहते थे कि राजा पहला आदेश हमें करें। किन्तु, पहला स्थान प्रधानमंत्री को मिला। उसने उस दूत के साथ चिता में छलांग भरी और देखते-देखते भस्म हो गया।

राजा स्वयं तैयार हुआ। ज्यो ही वह कूदने को उद्यत हुआ, हरिवल आगे आया। हिसा के इस रौरव कुण्ड को देखकर वह तिलमिला उठा। एक प्राणी की हत्या भी महान पाप का कारण होती है, वहा हजारों व्यक्ति मेरे कारण मारे जाएंगे? मेरे लिए यह परम निन्दनीय है। उसने राजा के चरण पकड लिए। सारे रहस्य को खोला और कहा—अपरावी ने सजा पा ली है। अब आप इस ओर अग्रसर न हो। राजा लज्जा के मारे जमीन मे धसने लगा। हरिवल ने उसे सन्तोप दिया और कहा—"आप द्वारा उठने वाले इस गलत कदम का निमित्त प्रधानमंत्री था। वह बार-बार आपको ऐसा ही परामर्श देता था, किन्तु, अब ऐसा नही हो सकेगा। विगत का पश्चात्ताप छोडे। भविष्य को उज्ज्वल बनाने का प्रयत्न करें।

राजा का मन वैराग्य से भर गया। वह राज-भवन में आया। अपनी कन्या का विवाह हरिवल के साथ किया। राज्य-भार उसे सौंपा और दीक्षित होकर साधना मे उत्तीर्ण हुआ।

o o o

वसन्तश्री के पिता राजा वसन्तसेन को प्रात- जब यह ज्ञात हुआ कि उसका अपहरण हो गया है, तो वह

उनके द्वारा-निर्दिष्ट समस्त व्रतो का मै पालन करूँ, तो न मालूम और कितनी प्रगति पर पहुँच सकूं। भौतिक ऐश्वर्य मे लीन रहने पर भी उसका चिन्तन ऊर्ध्वगामी था। वह अपनी तीनो प्रमुख रानियो के साथ अध्यात्म-भाव में लीन रहता और सबको यही प्रेरणा देता। उसने अपनी पूर्व पत्नी प्रचण्डा को भी अपने पास बुला लिया। उसकी प्रकृति का शोधन किया। अन्तिम समय में संयम ग्रहण किया और तपोनुष्ठान से आत्मा को भावित करते हुए केवल ज्ञान प्राप्त किया।

४

राजा हस

राजपुर नगर में हस राजा राज्य करता था। न्याय से प्रजा का पालन करता हुआ वह यश व पुण्य अर्जित कर रहा था। वह जैन श्रावक था। किसी भी परिस्थिति में वह असत्य का प्रयोग नही करता था। सत्यवादी के रूप में उसकी विशेष ख्याति थी।

रत्नशृ ग नामक एक पर्वत था। वहा भगवान् श्री ऋषभदेव का एक भव्य मदिर था। चैत्र पूर्णिमा को वहा विशेष उत्सव होता था, अत यात्रा के लिए दूर-दूर से सहस्रों श्रद्धालु पहुचा करते थे। राजा हस ने भी इस अवसर पर वहा पहुचने की सोची। उसने अपने मत्री वग को राज्य-व्यवस्थाओं के सचालन का दायित्व सौंप दिया और परिवार व कुछ सुभटो के साथ रत्नशृग पर्वत की ओर प्रस्थान कर दिया। राजा के मन में विशेष उमग थी, अत वह अपनी मजिल की ओर बढता जा रहा था। उसने आधा माग बहुत ही सहजता में पार कर दिया।

आक्रान्ता विशेष अवसर की ताक में रहता है। राजधानी से राजा की लम्बे समय तक की अनुपस्थिति प्रतिपक्षी के लिए विशेष उपयोगी बन जाती है। यात्रा के लिए राजा हस ने जब प्रस्थान किया, तो राजा अर्जुन ने राजपुर पर आक्रमण कर दिया। राजा अर्जुन की सेना ने राजा हस की सेना को कुचल डाला। बहुत सारे सैनिक रणक्षेत्र मे काम आ गए, बहुत सारे घायल हो गए और बहुत सारे भाग खड़े हुए। नगर की रक्षा व नागरिको की सुरक्षा का दायित्व वहन करने वाला कोई नही रहा। राजमहलो पर विरोधी राजा का आधिपत्य हो गया। धन-भण्डार को भी उसने हस्तगत किया और गज, अश्व, रथ आदि को अपने नियत्रण मे ले लिया। सारे ही नागरिक भय-त्रस्त हो गए। इस परिस्थिति का राजा अर्जुन ने लाभ उठाया। उसने यथाशीघ्र सर्वत्र अपने शासन की घोपणा करवा दी और स्वयं राज्य-सिहासन पर बैठ गया।

राजा हस यात्रा पर था। एक दूत राजा के पास पहुचा। उसने सारी स्थिति से राजा को अवगत किया और कहा—"सुमति मत्री ने आपके चरणो मे यह सारा उदन्त प्रस्तुत करने के लिए मुझे भेजा है। जैसा

आप उचित समझें, कदम उठाएँ।"

सहवर्ती सुभटो ने जब यह सुना, उनकी भुजाए फडक उठी। उन्होने राजा से निवेदन किया—"महाराज! यात्रा को स्थगित कर राजधानी की ओर ही चलें। आपके समक्ष कोई भी शत्रु नही टिक सकेगा। शत्रुओं को राजधानी से निर्वासित कर ही यात्रा के लिए जाना उचित होगा।"

राजा हस ने निर्णय लेने में विलम्ब नही किया। उसने कहा—"सम्पदाओ और विपदाओं का आगमन और गमन केवल प्रयत्न के अधीन ही नही होता। उसमें अपने पूर्वाजित शुभ-अशुभ कर्म भी हेतुभूत होते है। शुभ कार्य में सदैव आलस्य व प्रमाद होता रहता है। यात्रा के लिए जब कि प्रस्थान कर ही चुका हूं, तो राज्य के लोभ मे उससे पराङ्मुख होना मेरे लिए हितावह नही होगा। राज्य तो बहुत बार पाया है और भविष्य में भी वह अप्राप्य नही है। यात्रा से लौटकर ही हम राज्य की चिन्ता करेंगे।"

अपने साथियों के साथ राजा हस ने आगे प्रयाण कर दिया। सैनिको को अपने पारिवारिको की चिन्ता सताने लगी। एक-एक कर वे वापस लौटने लगे। राजा हस को जब यह ज्ञात हुआ, उसकी प्रसन्नता में

ही अभिवृद्धि हुई । उसने प्रयाण के क्रम मे गत्यवरोध नही होने दिया । अन्ततः राजा के पास केवल एक छत्र-वाहक रहा । अन्य सभी सैनिक व अग-रक्षक राजा को विना सूचित किये ही लौट आए । राजा आगे वढा, पर, मार्ग से भटक गया । अटवी की गहनता क्रमश. बढती ही जा रही थी । अनार्य भीलो की स्मृति से राजा के बढ़ते हुए कदम एक वार रुक गये । भीलो द्वारा राजा का वध होना कोई अप्रत्याशित घटना नही थी । किन्तु, उसका प्रतिकार भी उसने सोच लिया । शरीर से सारे आभूपण उतार कर उसने सहवर्ती सेवक को दे दिए और उसे अपने से अलग कर दिया । डर धन को होता है, शरीर को नही । राजा एकाकी ही उस गहन वन में चला जा रहा था ।

व्यक्ति के व्रत की परीक्षा किस समय होगी और कैसे होगी, इसका वहुधा पूर्वाभास नही होता । राजा कुछ दूर ही वढ पाया था कि एक कूदता-फादता हुआ हिरण उसके आगे से निकला । वह निमेप मात्र मे ही वृक्षों के झुरमुट में ओझल हो गया । एक धनुर्धारी किरात उसके पीछे दौडता हुआ आया । राजा से उसने मृग के वारे मे जानकारी चाही । राजा धर्म-

सकट में फस गया। उसने सोचा—यदि मैं सत्य बोलूगा, मृग की हत्या होगी। यदि मृग के बारे में अज्ञता व्यक्त करूगा, मेरा व्रत खण्डित होगा। किसी युक्ति से ही यदि अपना बचाव कर सकू, तो सुन्दर रहेगा। किरात शीघ्रता मे था, उसने वही प्रश्न पुन दुहराया। राजा ने उत्तर दिया—"मैं तो माग भूलकर इधर आ गया हू।"

किरात—"मैं तो तुझे मृग के बारे मे पूछ रहा हू। क्या वह इधर से गुजरा ? यदि गुजरा हो, तो किधर गया ?"

राजा ने प्रसग को टालते हुए कहा—"मैं राजा हस हू।"

किरात कुछ रोष में भर आया। उसने कहा—"मैं तेरा नाम नहीं पूछ रहा हू। किन्तु, मृग के बारे में पूछ रहा हू। बताओ, वह किधर गया ?"

राजा अपने निश्चय पर अटल था। उसने उसी प्रकार उत्तर दिया—"मेरा घर राजपुर में है।"

किरात पूरे रोष में आ गया। उसने कहा—"जो मैं पूछता हू, तू उसका उत्तर क्यो नहीं देता। अन्य प्रलाप से तेरा क्या प्रयोजन फलित हो रहा है ?"

राजा का चेहरा शान्त था। उसने पुन उत्तर में

कहा—"मैं क्षत्रिय हूं।"

किरात का पारा और ऊंचा चढ़ गया। आंखें लालकर उसने कहा—"क्या तू बहरा है। मैं पूछता कुछ ही हूं और तू कहता कुछ ही है।"

राजा की भाव-भंगिमा में कुछ भी अन्तर नहीं आया। उसने कहा—"मुझे तू जो भी मार्ग बताएगा, उस ओर ही मैं चला जाऊंगा।"

किरात पूरी तरह झल्ला उठा। कड़कते हुए शब्दों में उसने कहा—"मेरी आंखों के आगे से हट जा। मुझे ऐसा व्यक्ति नहीं चाहिए। व्यर्थ ही में विलम्ब हो गया।"

किरात एक ओर बढ़ गया और राजा भी धीरे-धीरे अपनी मंजिल की ओर आगे बढ़ने लगा। कुछ मार्ग तय हो चुकने पर राजा को सामने से आते हुए एक मुनि के दर्शन हुए। राजा ने इसे अप्रत्याशित अवसर माना। मुनि को सभक्ति वन्दना की। मुनि अपने गन्तव्य की ओर बढ़ गए और राजा अपने लक्ष्य की ओर। राजा की अभी कुछ परीक्षाएं अवशिष्ट थीं। राजा की ओर दौड़ते हुए दो भील आए। उन्होंने राजा से कहा—"इस अटवी में सूर नामक एक पल्लीपति रहता है। चोरी करने के अभिप्राय से अपने

साथियो से परिवृत्त होकर ज्यो ही आज उसने प्रस्थान किया, सबसे पहले उसकी दृष्टि एक मुण्डित मस्तक मुनि पर पडी । पल्लीपति ने इसे बहुत बडा अपशकुन माना । उसने कुपित होकर उस मुनि को मारने के लिए हमे भेजा है । वह पाखण्डी किधर गया है, हमें बताओ ।"

राजा असमजस मे पड गया । वह सोचने लगा, यदि मैं सत्य बोलूंगा, मुनि की हत्या होगी । यदि असत्य कहता हू तो व्रत खण्डित होता है । भीलों को टरकाते हुए उसने पूछा—"आपने क्या कहा ? मैं एक बार और सुनना चाहता हू ।"

भीलो ने पुन कहा—"क्या तेरे आगे से मुण्डित मस्तक कोई साधु गया ? यदि गया है, तो किस ओर गया है ? हमें यदि दिशा का पता चल जाए, तो हम उसका पीछा करें और उसे प्राण शून्य करें ।"

राजा ने बहुत सुन्दर उत्तर दिया । उसने कहा—"जो देखती है, वह बोलती नही है और जो बोलती है, वह देखती नही है ।'

भीलों ने समझा, जो हम कह रहे है, यह उसका हार्द नही समझ पाया है । उन्होंने पुन अपनी बात दुहराई । राजा ने भी अपने उसी वाक्य को दुहराया ।

रोष के साथ भीलो ने कहा—"निश्चित ही तू पागल है। दूर हट। व्यर्थ मे ही विलम्ब हो गया।" भील अपने मार्ग मे बढ गए और राजा अपने मार्ग में।

व्रत-पालन मे व्यक्ति को विशेष सजगता रखनी होती है। उसके अभाव मे व्रत की सुरक्षा कठिन हो जाती है। सन्ध्या के समय राजा एक वृक्ष के नीचे पहुचा। उसने वही विश्राम करने की सोची। पत्तो का आसन लगाया और प्रतिक्रमण आरम्भ कर दिया। उस वृक्ष के निकट एक निकुज था, जिसमे कुछ चोर छुपे हुए बैठे थे। उनकी अपनी एक योजना थी। उसके बारे मे वे बाते कर रहे थे। आज से तीसरे दिन इधर से एक सघ गुजरेगा। वह धन-धान्य, स्वर्ण आदि से अत्यधिक सम्पन्न होगा। उसे हम लूटेंगे। बहुत दिनो की दरिद्रता से सहज छुटकारा मिल जाएगा। यह सारी बात राजा के कानो मे टकराई। राजा का चिन्तित होना स्वाभाविक था। उसे निश्चय हो गया, ये चोर सघ का अनिष्ट करने पर तुले हुए है। सघ के साथ साधु-साध्वी, श्रावक आदि भी होगे। ये अनार्य उन्हे भी उत्पीडित करेगे। मै यहा अकेला हू। कौन-सा कदम उठाना चाहिए, जिससे सघ की रक्षा हो सके।

राजा हस अपनी योजना बना रहा था। कुछ ही क्षणो में हाथो में मशाल लिए कुछ सुभट वहा आ पहुचे। चोरों की गुप्त योजना का भेद उनके हाथ लग गया था। उन्होंने राजा हस को भी चोर ही समझा। उन्होंने परस्पर इस बारे में विमर्श किया। किन्तु, कुछ-एक साथियो ने राजा के चेहरे को देखते हुए उसका प्रतिवाद किया। उन्होने कहा—यह तो चोर नही है। कोई महान् आत्मा होना चाहिए। सम्भव है, इससे हमें चोरों के बारे में कुछ रहस्य ज्ञात हो सके। सैनिको ने राजा के समक्ष अपनी पहेली प्रस्तुत की। उन्होने कहा—"कुछ ही दिनों बाद इस मार्ग से एक सघ गुजरने वाला है। कुछ चोरों ने उस सघ को लूटने की योजना बनाई है। यहां से दस योजन दूर श्रीनगर है। रिपुमर्दन वहा के राजा हैं। राजा ने सघ को सुव्यवस्था व कल्याण के लिए हमें भेजा है। राजा का हमें आदेश प्राप्त है कि तस्करों की छानबीन करके पकड लिया जाये। यदि वे अनीति पर ही तुले हुए हो, तो उन्हे मौत के घाट ही उतार दिया जाये। सघ यात्रा सकुशल होनी चाहिए, यह राजा की कामना है। हम उन चारो की खोज में आए है। महाभाग! यदि तुम्हें कुछ पता हो, तो हमें बताओ।"
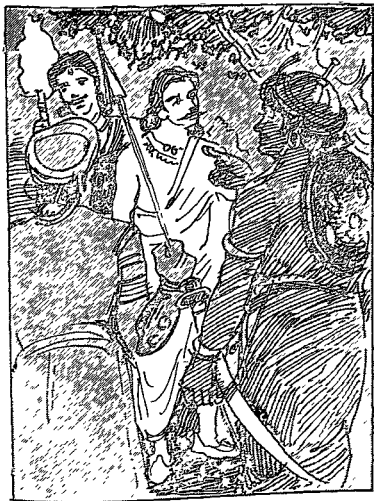
किन्तु कुछ साथियों ने राजा के चेहरे को देखते हुए उसका प्रतिवाद किया। उन्होंने कहा—"कुछ ही दिनों बाद इस मार्ग से एक संघ गुज-रने वाला है। कुछ लोगों ने इस संघ को लूटने की योजना बनाई है।'

सत्यवादी अपने व्रत को खण्डित नहीं करता। साथ ही वह अनिष्ट, अप्रिय व सम्भावित हिंसा के मम का उद्घाटन भी नहीं करता। बहुत सारी परिस्थितियों मे व्यवहार और चेतना का मघप उसके समक्ष प्रस्तुत हो जाता है। तब वह धम-सकट में से गुजरता है। किन्तु, चेतना की उपेक्षा कर वह केवल व्यवहार को ही प्रधानता नही देता। राजा हस के समक्ष एक ओर सघ सुरक्षा का प्रश्न था और दूसरी ओर अपने व्रत का। यदि चोरो की ओर सकेत करता है, तो सघ की सुरक्षा तो होती है, किन्तु, व्रत अतिचार से मलिन हो जाता है। आत्मार्थी का विवेक प्रबुद्ध होता है। उसने कहा—"चोरो के देखने या न देखन के प्रसग में उलझकर आप अपना समय क्यो बिता रह है। इससे कौन सी अभिसिद्धि आपको हस्तगत होने वाली है। सघ की रक्षा तो सघ के साथ रहने से ही हो सकती है। आप वहा जाये। चोर तो वहा भी पहुच सकते है।" सुभटो ने सघ की ओर प्रस्थान कर दिया।

वास्तविक धर्माचरण क्रूर व्यक्ति का भी हृदय बदल देता है। सुभटों को दिया गया उत्तर सुनकर चोर बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सोचा—यह तो कोई

राजा हस को इधर से आते हुए देखा है ?"

राजा हस अपना नाम सुनकर चकित हुआ। उसने जिज्ञासा के स्वर मे पूछा—"आप किस प्रयोजन से पूछ रहे है ?"

आगन्तुक घुडसवारों ने सारा वृत्तान्त बताते हुए कहा—"हम राजा अर्जुन के विश्वस्त सेवक है। राजा अर्जुन ने राजपुर पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। राजा हस अपने प्राणो की रक्षा के निमित्त बच निकला। हम उसी की खोज में आए है। राजा अर्जुन ने हमको उसके वध के लिए आज्ञा प्रदान की है। यदि तूने उसे देखा हो, तो बता दे ताकि हमारा काम सुगमता से हो सके।"

राजा हस सोचने लगा, दूसरों के प्रसग पर मैं अपने व्रत की सुरक्षा सुगमता से कर सका। अब प्राणों पर ही आ बनी है। उसने अपने आत्म पौरुष को बटोरा। दृढ निश्चय किया, प्राण मुझ से बिछुड सकते है, किन्तु, मै सत्य से दूर नही जा सकता। प्राणों की नश्वरता है और सत्य मेरी चेतना का सहज धर्म है। उसने तत्काल कह दिया—"बन्धुवर! जिस राजा हस की खोज में तुम घूम रहे हो, वह मैं ही हू। तुम्हारे समक्ष प्रस्तुत हू। जो चाहो, कर सकते हो।"

राजा आँखे मूदकर खडा हो गया। उसने मन-ही-मन नवकार मत्र का स्मरण आरम्भ कर दिया। जीवन के प्रति रही हुई अपनी अव्यक्त लालसा से ऊपर उठने लगा। आत्म-बल में क्रमशः वृद्धि होने लगी। कुछ ही क्षणो में वातावरण बदल गया। आसुरी शक्तियो पर आत्मीय शक्तियो की विजय हुई। आकाश मे देव-दुन्दुभि बजने लगी। फूलो की वर्षा होने लगी। सत्यवादी राजा हंस की विजय के नारों से आकाश गूँज उठा। प्रकृति भी इस अवसर पर झूम उठी। एक सम्यक् दृष्टि यक्ष वहां प्रकट हुआ। उसने कहा—"राजन्! मै तेरी सत्यवादिता से अतिशय प्रभावित हुआ हू। मैने तेरे शत्रुओ को तेरी राजधानी से निर्वासित कर दिया है। जिस यात्रा के लिए तुम जा रहे हो, वह दिन तो आज ही है। तुम वहां तक अपने सामर्थ्य से इतने थोड़े समय मे कैसे पहुच पाओगे? मेरे विमान मे बैठो। हम दोनो ही साथ-साथ चले।"

आलोचित कार्य की निकटवर्तिनी सफलता से राजा हस का मानस पुलक उठा। वह विमान मे वैठ-कर रत्नशृग पर्वत पर भगवान् श्री ऋषभदेव के मदिर के बाहर पहुचा। उसकी समस्त कामनाए पूर्ण हो

गई। भाव-प्रवण होकर उसने भगवान् की उपासना की। यक्ष ने राजा हस को अपने विमान से ही अपने नगर राजपुर पहुचा दिया। प्रतिपक्षी राजा अर्जुन कारागार में था। राजा हस ने यक्ष से कह कर उसे मुक्त कराया। अपने चार सेवक देवताओ को यक्ष ने राजा हस की परिचर्या में छोड दिया। उन्हें आदेश दिया कि राजा हस के महलों में दैवी सम्पदाओं का अखूट भण्डार होना चाहिए और सारे विघ्नो का निवारण होना चाहिए। राजा हस से अनुमति ग्रहण कर यक्ष अपने स्थान को लौट आया।

●

: ५ :

लक्ष्मीपुञ्ज

हस्तिनापुर मे सुधर्मा नामक एक वणिक् रहता था। वह बहुत गरीब था। वह जीव-अजीव आदि नव तत्त्वो का वेत्ता था। कौडियो के व्यापार से अपनी आजीविका चलाता था। दु ख में ही उसका जीवन बीतता था। उसकी पत्नी का नाम धन्ना था। एक रात मे वह सुख से सो रही थी। स्वप्न मे उसने पद्म द्रह पर वास करने वाली श्रीदेवी को देखा। श्रीदेवी हार-कुण्डल आदि आभूषणो से सज्जित थी और रत्न-स्वर्णमय कमल पर विराजमान थी। स्वप्न देखते ही धन्ना, प्रतिबुद्ध हुई। उसने अपने पति को सारा वृत्तान्त सुनाया। सुधर्मा ने तत्काल कहा—"अब हमारे दु.ख के दिन बीत चुके है। हमारे घर एक पुत्र का जन्म होगा, जो ऋद्धिशाली व बुद्धिमान् होगा और उसकी कीर्ति बहुत विस्तृत होगी।" धन्ना ने धर्म-जागरण में ही शेप रात्रि व्यतीत की।

पुण्यशाली का आगमन ऋद्धि और सौभाग्य का

वधक होता है। धन्ना ने जिस दिन वह स्वप्न देखा था, उसी दिन से सुधर्मा की स्थिति में परिवर्तन होने लगा। व्यापार में उसके कुछ-कुछ लाभ होने लगा। एक ओर गर्भ वृद्धि पर था और दूसरी ओर आर्थिक विकास भी वृद्धि पर था। फिर भी सुधर्मा कुछ चिन्तित था। उसे रह-रह कर यही विचार दबाता जा रहा था, ऐसे पुण्यशाली पुत्र का जन्मोत्सव कैसे करूगा, जबकि निर्धनता मेरा दामन ही नहीं छोडती है। सुधर्मा इसी चिन्ता में डूबा हुआ घर के खुले मैदान में खडा था। पैर के अगूठे से सहसा कुछ मिट्टी हट गई। मणि और सुवण से भरा एक कलश भूमि में गडा हुआ, उसकी नजर में पडा। सुधर्मा को दृढ़ विश्वास हो गया, निश्चित ही यह गभ का प्रभाव है। उसने कुछ मणि बेच दिए। उसके पास लाखों की सम्पत्ति हो गई। उसने सात मजिल का एक बडा मकान बना लिया। घर पर दास दासियों की भीड-सी लग गई। सुधर्मा कलश से ज्यो-ज्यो धन निकालता, त्यों-त्यों वह बढता ही जाता, क्षीण नहीं होता।

धन्ना को जो भी दोहद उत्पन्न हुए, सुधर्मा ने उन्हें पूर्ण किया। पूरा समय सम्पन्न हुआ, तो धन्ना

ने पुत्र का सुखपूर्वक प्रसव किया। सुधर्मा ने विशेष महोत्सव किया। तीसरे दिन पुत्र को सूर्य-चन्द्र के दर्शन कराए गए। छठे दिन रात्रि-जागरण किया गया और ग्यारहवे दिन अशुचि का अपनयन किया गया। बारहवे दिन पारिवारिक जनो को भोजन आदि से सत्कृत किया गया और नाम-सस्कार-विधि सम्पन्न की गई। बालक का नाम लक्ष्मीपुञ्ज रखा गया।

लक्ष्मीपुञ्ज जब आठ वर्ष का हुआ, धनाढ्य वणिकों की आठ कन्याओ के साथ उसका विवाह किया गया। आठो पत्नियो के साथ अपने सप्तभौमिक आवास में वह आनन्दपूर्वक रहने लगा। कोई भी भौतिक सुख उसके लिए अलभ्य नही था। एक दिन वह सोचने लगा, यह अपरिमित भोग-सामग्री मुझे कहा से प्राप्त हुई? उसी समय एक दिव्य रूपधारी व्यक्ति वहां आया। करबद्ध हो उसने कहा—"महाभाग! लक्ष्मीधर नामक एक नगर है। वहां गुणधर नामक एक सेठ रहता है। वह धनाढ्य व सरल स्वभावी है। एक दिन वह उद्यान मे गया। वहां उसे एक प्रशान्त आत्मा मुनि के दर्शन हुए। उनके चरणों बैठे हुए अनेक विद्याधर उपदेश सुन रहे थे। ने भी उन्हे तीन प्रदक्षिणा-पूर्वक नमस्कार

उपदेश सुनने लगा । मुनिवर उस समय चोरी के दूषण पर प्रकाश डाल रहे थे । उन्होने विस्तार के साथ उस प्रकरण का विवेचन किया । सेठ गुणधर उससे बहुत प्रभावित हुआ । मुनिवर के समक्ष खडे होकर सम्पूर्णतया अदत्त का परित्याग कर दिया । वह अपने घर लौट आया ।

जो जिसका त्याग करता है, बहुधा वही वस्तु उसकी कसौटी बन जाती है । सेठ एक बार साथ का निर्माण कर देशान्तर की ओर चला । पाच सौ शकट उसके साथ थे । साथ भयकर जगल मे पहुच गया । राज-भय से गुणधर सेठ ने साथ का साथ छोड दिया और अकेला ही घोडे पर सवार होकर किसी पगडण्डी से चल पडा । माग में रत्नों का एक हार पडा हुआ मिला । सेठ का हृदय उस ओर तनिक भी नहीं ललचाया । वह उसे वहीं छोडता हुआ आगे बढ गया । काफी दूर चले जाने पर भी साथ के सहवर्ती मनुष्यों का कोलाहल उसे वहा भी सुनाई दे रहा था, अत उसने घोडे पर एड दबाई और शीघ्रता से आगे बढने लगा । माग मे घोडे के खुर से कुछ मिट्टी दूर हुई । उसे गडा हुआ एक निधान दिखाई दिया । राजा ने उस ओर दृष्टि डालना भी उचित नही समझा ।

घोडे को शीघ्रता से चलाने के लिए उसने फिर एड दबाई। घोडा पवन वेग से चलने लगा। किन्तु, कुछ दूर ही चल पाया होगा, अचानक वह गिर पडा और सदा के लिए उसने आखे मूद ली। सेठ पाप-भीरु था। उसने सोचा, निश्चित ही घोडा मेरे कारण से मरा है। उसने उच्च स्वर मे कहा—"यदि कोई मेरे इस घोडे को जिला दे, तो उसे मै अपना सारा धन दे दूगा।" किन्तु, कोई भी नही आया। घोडे को वही छोड कर वह आगे चल पडा।

व्रत-परीक्षा के अनेक प्रकार होते है। प्रलोभन, भय, पीडा, आत्मीय जनो की मृत्यु, धन का अपहरण आदि इनमे मुख्य है। व्रती व्यक्ति को इन सब कसौटियो से होकर गुजरना होता है। गुणधर श्रेष्ठी अकेला ही वन में बढा जा रहा था। उसका गला सूखने लगा। चारो ओर पानी की खोज की। बहुत देर बाद उसे एक वृक्ष-शाखा पर पानी से भरी एक बडी मशक दिखाई दी। उसे एक राहत का अनुभव हुआ। वह वहा आया। प्यास से अकुला रहा था, फिर भी व्रत की स्मृति उसे उसी प्रकार थी। उसने जोर से बोलकर पूछा—"यह मशक किसकी है ? मैं प्यासा हू।" वृक्ष की एक अन्य शाखा से एक पिजरा बन्धा हुआ

वृक्ष की एक अन्य शाखा से एक पिंजरा बँधा हुआ था। उसमें एक तोता था। उसने उत्तर दिया— यह मकान एक वैद्य का है। वह औषधियों की खोज में दूर सघन वन में गया हुआ है।

था। उसमे एक तोता था। उसने उत्तर दिया—"यह मशक एक वैद्य की है। वह औषधियों की खोज मे दूर सघन वन मे गया हुआ है। वह वापस कब लौटेगा, किसी को भी पता नही है। यदि तुझे प्यास लग रही है, तो सुख से तू पानी पीले। किन्तु, इसका स्वामी या उसका कोई निजी व्यक्ति यहां नहीं है।

प्यास के मारे गुणधर सेठ की आखे बाहर निकलने लगी। आगे चलना या अधिक बोल पाना उसके लिए कठिन हो गया था। फिर भी उसने तोते से कहा—"प्यास मेरे प्राण ले सकती है, किन्तु, मै अदत्त

चलता है। इस काय मे अदत्त ग्रहण न करने का नियम पालन करना असम्भव ही है। इसीलिए मैंने तुम्हारी परीक्षा की थी। रत्नमाला, निधान आदि मैंने ही अपने विद्याबल से वहा रखे थे। तुम्हारा मन तनिक भी विचलित नही हुआ। तुम्हारे घोडे को भी मैंने मृतवत् दिखलाया था। भयकर प्यास से पीडित होने पर भी और तोते द्वारा पुन-पुन कहे जाने पर भी तुमने पानी नही पिया। उस तोते और मशक को भी मैंने ही वहा स्थापित किया था।" उसने अपने विद्याधर-सेवको को आह्वान किया, तो अदृश्य रहे हुए वे सारे ही वहा आ खडे हुए। सूर विद्याधर के निर्देश से उन्होने वह रत्नमाला, निधान, अश्व और अन्य भी बहुत सारा धन उस सेठ को उपहृत किया। उस सामग्री के साथ विद्याधर ने उसे साथ में पहुचा दिया।

गुणधर ने विद्याधर से कहा—"यह सम्पत्ति यहा क्यों लाई गई है?" विद्याधर ने कहा—"मेरे पिता ने मुझे चोरी से निवृत्त होने की विशेप प्रेरणा दी, किन्तु, मैं व्यसनी था, अत मुक्त न हो सका। आज जब कि तुम्हारा यह जीवन्त स्वरूप देखा, तो मुझे भी प्रेरणा मिली और मैंने सदा के लिए ही चोरी छोडने का दृढ सकल्प कर लिया है। इस अथ में तुम मेरे

गुरु हो गए । मै अपने गुरु की इस धन से पूजा-अर्चा करना चाहता हू ।" गुणधर ने सहज उत्तर दिया— "यह धन जिसका हो, उसे ही वापस सौप दो ।" विद्याधर ने कहा—"यह तो मेरा ही है और यह तुम्हे उपहृत है ।"

विद्याधर गुणधर को अपना धन देना चाहता था। गुणधर ने अपनी सारी सम्पत्ति उसके समक्ष रखते हुए कहा—"तुम्हे मेरी घोषणा याद होगी । मैने यह प्रतिज्ञा की थी कि घोडे को जीवन-दान देने वाले को मै अपनी सारी सम्पत्ति भेंट कर दूगा । तुमने मेरे घोड़े को जीवन-दान दिया है, अतः मेरी सम्पत्ति के वास्तविक अधिकारी तुम्ही हो ।"

विद्याधर ने कहा—"तुम मेरे पूज्य हो, अत. मै तुम्हारी सम्पत्ति कैसे ले सकता हू ? मेरी सम्पत्ति को तुम नही लेते और तुम्हारी सम्पत्ति मैं नही लेता, वैसी स्थिति में इसका क्या होगा ? क्या यह ऐसे ही पड़ी रहेगी ?"

गुणधर सेठ ने इसका समाधान खोज निकाला । उसने कहा—"इसका हम दोनो ही उपयोग नही करेंगे । इसका उपयोग सार्वजनिक, सामाजिक व धार्मिक कामो मे होगा ।" दोनो को ही यह सुभाव

उचित लगा।

सेठ गुणधर ने धर्म-ध्यान में लीन रह कर अपनी साधना की। आयुष्य समाप्त कर वही गुणधर यहा तू लक्ष्मीपुंज हुआ है। उस विद्याधर ने भी समय पर अपना आयुष्य समाप्त किया और वह मैं व्यन्तर देव हुआ हू। तुम्हारे पुण्य-प्रभाव व पूर्व स्नेह से प्रेरित होकर जब से तुम गर्भ में आए हो, सारी सामग्री यहा मैं जुटा रहा हू। इसे मैं अपना कर्त्तव्य समझता हू।
लक्ष्मीपुञ्ज को उसी समय जाति-स्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई। उसने अपना पूर्व भव देखा। वैराग्य भावना जागृत हुई। उसका परिपाक हुआ। उसने भौतिक सामग्री ठुकेरा दी और दीक्षा ग्रहण कर ली। शुभ भावो से साधु-पर्याय का उसने पालन किया। आयुष्य पूर्ण कर अच्युत कल्प में देव हुआ। वहा से मनुष्य का जन्म गहण कर दीक्षा लेगा और तप-सयम से आत्मा को भावित करता हुआ निर्वाण प्राप्त करेगा।

●

: ६ :

मइरावती

क्षितिप्रतिष्ठित नगर में रिपुमर्दन राजा राज्य करता था। मदनरेखा उसकी पटरानी थी। वह श्रद्धा-शीला व तत्त्वज्ञा श्राविका थी। कुछ समय बाद उसने एक कन्या को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया—मइरावती। मइरावती के संस्कार अपनी माता की तरह ही धार्मिक थे। रूप, सदाचार व चातुरी का अद्भुत मिश्रण था। राजा ने उसकी शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध किया। कुछ ही दिनों में उसने चौसठ कलाओं का शिक्षण प्राप्त कर लिया। रानी मदन-रेखा भी समय-समय पर उसे धार्मिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया करती थी। मइरावती सम्यक्त्व की शुद्ध आराधना करने लगी और कर्मवाद की भी विशेष ज्ञाता हो गई।

रानी मदनरेखा ने एक दिन राजकुमारी मइरावती को वस्त्राभूषणों से सजा कर राज-सभा में भेजा। राजकुमारी ने वहा पहुचकर राजा के चरणो मे सादर

नमस्कार किया। राजा ने वात्सल्य से प्रेरित होकर उसे अपने उत्संग में बिठा लिया।

राजा रिपुमर्दन का कुछ अहं उभरा। उसने मंत्री को सम्बोधित करते हुए कहा—"मेरी जैसी ऋद्धि, मेरे जैसी शालीन सभा और मेरे जैसा कुलीन कुटुम्ब क्या किसी अन्य राजा के पास मिल सकता है ?"

उपस्थित सभासदों ने एक स्वर से उत्तर दिया—'आपके जैसी ऋद्धि, सभा और कुटुम्ब तो अन्य राजा के लिए स्वप्न में भी दुर्लभ है।"

राजकुमारी ने स्मित हास्य के साथ अपना सिर डुलाया। राजा को आश्चर्य हुआ। उसने राजकुमारी से सिर डुलाने का प्रयोजन पूछा। राजकुमारी ने निर्भयता से कहा—"सभासदों ने जो भी कहा है, वह चापलूसी से भरा हुआ है और सत्य के सर्वथा विरुद्ध है। इस भूमण्डल पर अनेक राजा है, जिनके पास तरतमता से ऋद्धि, सभा व कुटुम्ब आदि सब है। यह क्या गौरव करने की बात है ?"

राजा को राजकुमारी का कथन असामयिक लगा। अन्यमनस्कता में सभासदों से उसने दूसरा प्रश्न किया—"तुम लोग किसके अनुग्रह से सुखी हो ?"

सभासदों ने अपने सीने को फुलाते हुए कहा—

"यह भी क्या प्रश्न हो सकता है। हम सब आपके अनुग्रह से सुखी है। कल्पवृक्ष के अतिरिक्त क्या अन्य वृक्ष हमे सन्तुष्ट कर सकता है ?"

राजकुमारी ने सभासदो के कथन को चुनौती दी। उसने कहा—"झूठ बोलकर व्यर्थ ही अपनी चापलूसी का परिचय तुम लोग क्यो दे रहे हो ? शुभ-अशुभ की प्राप्ति प्राणी के अपने कर्मानुसार ही होती है।"

राजा की ओर उन्मुख होकर उसने कहा—"पितृ-वर ! यदि आपके द्वारा ही सब कुछ होता हो, तो आप अपने सेवको को समान सुखी क्यों नही बना देते। आपके कुछ सेवक तो बहुत ऋद्धि-सम्पन्न है और कुछ गरीब भी है। जिस व्यक्ति ने विगत मे जैसे और जितने शुभ कर्म किए है, उनके अनुसार ही आप उनके सुख मे निमित्त होते है। आप दूसरो से पूछते है, मैं अपने बारे मे भी आपसे निवेदन कर सकती हूँ, मैं भी अपने शुभ कर्मो से आपके घर उत्पन्न हुई हूं और उनके आधार पर ही मुझे यह सुख-सामग्री उप-लब्ध हुई है।"

राजा का रोष जाग उठा। राजकुमारी पर गर्-जते हुए उसने कहा—"मूर्खे ! इस प्रकार असम्बद्ध

प्रलाप करना तुझे किसने सिखाया ? ज्ञात होता है पुत्री के रूप में तू मेरी शत्रु है । तुझे ज्ञात होना चाहिए, जिस पर मेरे अनुग्रहशील नेत्र टिक जाते हैं, दरिद्र भी धनाढ्य हो जाता है और जिस पर मेरे सरोष नेत्र टिक जाते हैं, वह यदि धनाढय भी होता है, तो दरिद्र होते समय नहीं लगता । यदि तू मेरी कृपा का फल मानेगी, तो तेरा विवाह धनाढय व उत्तम राजकुमार के साथ किया जायेगा और यदि ऐसा नही मानेगी, तो किसी दीन व अत्यन्त रक के साथ होगा ।"

राजकुमारी का पौरुष फडक उठा । स्मित हास्य के साथ उसने कहा—"पितृवर ! आपके द्वारा चुना गया श्रेष्ठ वर भी यदि मेरे पुण्य कर्मो का अभाव है तो वह रक हो जाएगा । यदि मेरे पुण्य प्रबल है, तो आपके द्वारा खोजे गए रक वर को भी समृद्धि-सम्पन्न व राज्य-सम्पन्न होते विलम्ब नहीं लगेगा । अह-भावना असार-वृक्ष की मूल है, अत पिताजी ! इसे छोडें ।"

राजा राजकुमारी पर बरसने लगा । उसने अपने अनुचरो को आज्ञा दी—"शीघ्र ही एक ऐसे व्यक्ति को उपस्थित करो जो अत्यन्त दु खी, दीन, रोगी व हीन कुल में उत्पन्न हो ।"

राजकुमारी तनिक भी विचलित नही हुई । अनुचर उसी समय दौडे । एक चौराहे पर एक व्यक्ति पडा हुआ सिसकिया भर रहा था । राजा के कथनानुसार वह उपयुक्त ही था । वे उसे ले आये । राजा के समक्ष उसे उपस्थित किया । उसे देखकर राजा को बडी प्रसन्नता हुई । उसके कान गले हुए थे, नासिका एकदम पिचकी हुई थी, लम्बे-लम्बे होठ थे, कपोलो मे गहरे खड्डे पड़े हुए थे और शरीर केवल अस्थि-पजर मात्र था । वह कुष्ठी भी था । सारा शरीर रिस रहा था । उस व्यक्ति की ओर राजा ने सकेत किया और व्यग कसते हुए राजकुमारी से कहा—"तेरे कर्मो के अनुसार ही इसे यहां बुलाया गया है । इसके साथ विवाह् कर ।"

मनस्वी व्यक्तियो के चिन्तन और कार्य मे भेद नही होता । राजकुमारी तत्काल वहा से उठी और उसने उस कुष्टी के साथ विवाह् कर लिया । सभा मे हाहाकार मच गया । राजा का रोप और भी उभरा । उसने राजकुमारी के आभूपण भी उतरवा लिए और सामान्य वस्त्रों के परिधान मे उस कुष्टी के साथ शहर से बाहर निकलवा दिया । राजकुमारी की प्रसन्नता मे कोई अन्तर नही था । वह अपने पति के साथ

शहर के बाहर चली आई । एक देवालय में उन दोनों ने रात्रि विश्राम किया ।

कुष्टी के हृदय मे आत्मीयता उभरी । राजकुमारी को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—"भद्रे ! राजा ने जो कुछ भी किया है, निश्चित ही अनुचित है । यह तेरे लिए भी सुन्दर नहीं हुआ और राज-वंश के लिए भी सुन्दर नहीं हुआ । मेरे साथ तेरा योग सर्वथा बेमेल है । कहा करीर और कहा कल्पलता ? कहाँ कौआ और कहाँ रत्नमाला ? एक ओर तेरे जैसी सुकुमाला और लावण्य से परिपूर्ण बाला और एक ओर मेरे जैसा भयंकर रोगी, निश्चित ही यह तेरी विडम्बना है । तेरे पिता ने जो कुछ भी किया, मेरा मन उसे स्वीकार करने को उद्यत नही है । मैं तुझे प्रसन्नता पूर्वक कहता हूँ, तू मेरा साथ छोड दे । किसी महर्द्धिक युवक के साथ तू पुन विवाह कर ले । जहा भी तू जाएगी, राज हसी की तरह तेरा सम्मान होगा । मुझे इसमे तनिक भी कष्ट नही होगा ।"

राजकुमारी ने ज्यों ही यह सब सुना, उसके धीरज का बांध टूट गया । उसे ऐसी अनुभूति हुई, जैसे किसी ने उस पर वज्र का प्रहार किया हो । सिसकियां भरते हुए उसने कहा—"प्राणनाथ ! आपके मुह से मैं

यह क्या सुन रही हू ? किसी भी प्राणी का स्त्री गोत्र में आना, अनन्त पापोदय के बिना नही होता, फिर वहा उसका जीवन शील-रहित होना, अत्यन्त भयावह हो जाता है। शील के बिना नारी की शोभा नही है। यौवन, सौन्दय और सम्पदा इस जीव ने अनन्त बार पाई है, किन्तु, शील-रूप रत्न की प्राप्ति दुलभ है। आप चाहे रोगी है या नीरोग है, निधन है या धनवान हैं, मेरे लिए तो आप ही हैं। आपके अतिरिक्त मेरा अग्नि शरण ही हो सकता है। आज के बाद इस तरह के वाक्यों को आप भूल चूक कर भी न दुहराएँ।"

मदरावली के शब्दो से कुष्टी बहुत सन्तुष्ट हुआ। सूय छिप चुका था। चारों ओर सघन अधेरा छा रहा था। कुष्टी नीद में सो रहा था। राजकुमारी पति के चरणों में बैठी हुई परमेष्ठी पचक का स्मरण कर रही थी। उसी समय एक महिला ने वहा प्रवेश किया। उसके साथ एक पुरुष था। आगन्तुक महिला ने राजकुमारी को सम्बोधन करते हुए कहा— कन्यके ! मैं नगर की अधिष्ठायिका देवी हू। तेरे पिता ने जो तेरी विडम्बना की है, उसे देखकर मेरा दिल भर आया है। मैं तेरे पर अनुग्रहशीला हू।" सहवर्ती पुरुष की ओर सकेत करते हुए उसने कहा—"यह सौभागशाली

व रूप-सम्पन्न पुरुप तेरे लिए ही है; अतः तू इस कुष्टी को छोड दे और इसके साथ अपने भावी जीवन को सम्बद्ध करले। तुम दोनो के लिए यथेच्छित सुख-सामग्री की उपलब्धि का दायित्व मेरे पर हैं। मै इसे सदैव निभाती रहूंगी।"

विचारो मे यदि परिपक्वता न हो तो ऐसे समय पर व्यक्ति का फिसल जाना असम्भव नहीं होता। मडरावती अपने विचारो में दृढ थी। साहस के साथ उसने कहा—"माता! तूने मेरे पर कृपा की, इसके लिए मैं तेरे प्रति आभार व्यक्त करती हूं। किन्तु, मेरे पिताजी ने सभासदों के समक्ष इनके साथ विवाह कर दिया, अत मै इन्हे कैसे छोड सकती हू ? पति का वरण तो एक बार ही होता है ? जिसके प्रति मैंने अपने जीवन का समर्पण कर दिया, मैं उन्हे कभी भी नही छोड सकती। जिन्हे आप कुष्टी कह कर पुकार रही है, मेरे लिए ये इन्द्र से भी अधिक हैं। मेरा यदि भाग्य फलेगा, तो इनमे ही सब कुछ प्राप्ति हो जाएगी। मेरी एक ही प्रार्थना है, जिस पुरुप को तू मेरे लिए लाई है, उसे तू अपने स्थान पर पहुचा दे।"

देवी के निर्देश को भी जब मडरावती ने ठुकरा

दिया, तो वह कुपित हुई। उसने राजकुमारी को पैरो से पकडा और आकाश मे उछाल दिया। जब वह नीचे गिरने लगी, देवी ने उसे त्रिशूल मे पिरो लिया और कडक कर कहा—"मेरे निर्देशानुसार यदि करेगी, तो तेरे लिए स्वर्गीय आनन्द है, अन्यथा मृत्यु निश्चित है।"

मइरावती का एक ही कथन था—"प्राणों का विसजन स्वीकाय है, किन्तु, अपने पतिव्रत धम से नहीं डिगूगी। यह शरीर तो विनाशी है। एक दिन अवश्य ही नष्ट होगा।" उसके मुख से नवकार मन्त्र का उच्चारण होने लगा। वह सव कुछ भूल गई। उसकी स्मृति मे पतिव्रत धम और नवकार मन्त्र ही था। कुछ ही क्षणों में वह देखती है कि वह अपने स्थान पर सुख से बैठी हुई है। वहा न तो देवी है, न वह पुरुप है और न वह कुष्टी भी। वह अकेली ही वहा बैठी है। ऐसी परिस्थिति मे आश्चय सहज था। वह सोचने लगी क्या यह सत्य है या स्वप्न? मेरे वे कुष्टी पति कहा गए? अगले ही क्षण उसने अपने सम्मुख एक दिव्य पुरुप को देखा, जो वस्त्र आभूपणो से अलकृत था। वह कुछ पूछे उससे पूर्व ही आगन्तुक व्यक्ति ने अपना परिचय देते हुए कहा—"वैताढ्य

पर्वत पर मणिपुर नगर है। वहा विद्याधरो का राजा मणिचूड राज्य करता है। वह मै ही हू। एक बार रात में मै वीरचर्या से घूम रहा था। किसी ने एक श्लोक पढा ·

सर्वत्र वायसा: कृष्णा: सर्वत्र हरिता. शुका: ।
सर्वत्र सुखिनां सौख्य, दु ख सर्वत्र दु खिनां ॥

"कौए सर्वत्र काले होते है और तोते सर्वत्र हरे। सुखी व्यक्तियो के लिए सर्वत्र सुख है और दु.खी व्यक्तियो के लिए सर्वत्र दुःख।" मैने इस तथ्य की परीक्षा करने की ठानी। मै वहा से चलकर इस नगर में आया। अपने विद्या-बल से मै कुष्टी बना। चौराहे पर आकर बैठा। उसी समय राजपुरुषो ने आकर मुझे उठा लिया और राजा के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। देखते-देखते ही मेरा तेरे साथ विवाह हो गया। मुझे इसके तात्पर्य का पता नही है। मैने ही तेरी दु खद परीक्षा की थी, किन्तु, तू अपने लक्ष्यसे विचलित नही हुई। तू धन्या है, व श्लाघनीया है। मैं भी धन्य हूं और मेरा राज्य भी कृतार्थ है। मेरा जीवन सफल हो गया कि मुझे तेरे जैसे शील-सम्पन्न नारी-रत्न की अनालोचित ही प्राप्ति हुई।

राजकुमारी को अपने कानो पर विश्वास नहीं

दिया, तो वह कुपित हुई। उसने राजकुमारी को पैरो से पकडा और आकाश मे उछाल दिया। जब वह नीचे गिरने लगी, देवी ने उसे त्रिशूल में पिरो लिया और कडक कर कहा—"मेरे निर्देशानुसार यदि करेगी, तो तेरे लिए स्वर्गीय आनन्द है, अन्यथा मृत्यु निश्चित है।"

मदरावती का एक ही कथन था—"प्राणों का विसजन स्वीकाय है, किन्तु, अपने पतिव्रत घम से नही डिगूगी। यह शरीर तो विनाशी है। एक दिन अवश्य ही नष्ट होगा।" उसके मुख से नवकार मन्त्र का उच्चारण होने लगा। वह सब कुछ भूल गई। उसकी स्मृति में पतिव्रत घम और नवकार मन्त्र ही था। कुछ ही क्षणों में वह देखती है कि वह अपने स्थान पर सुख से बैठी हुई है। वहां न तो देवी है, न वह पुरुप है और न वह कुष्टी भी। वह अकेली ही वहा बैठी है। ऐसी परिस्थिति में आश्चय सहज था। वह सोचने लगी क्या यह सत्य है या स्वप्न ? मेरे वे कुष्टी पति कहा गए ? अगले ही क्षण उसने अपने सम्मुख एक दिव्य पुरुप को देखा, जो वस्त्र-आभूपणों स अलकृत था। वह कुछ पूछे उसमे पूव ही आगन्तुक व्यक्ति ने अपना परिचय देते हुए कहा—"वैताढ्य

पर्वत पर मणिपुर नगर है। वहा विद्याधरो का राजा मणिचूड राज्य करता है। वह मै ही हू। एक बार रात में मैं वीरचर्या से घूम रहा था। किसी ने एक श्लोक पढा

सर्वत्र वायसा कृष्णा सर्वत्र हरिता शुका.।
सर्वत्र सुखिना सौख्य, दु ख सर्वत्र दु खिना ॥

"कौए सर्वत्र काले होते है और तोते सर्वत्र हरे। सुखी व्यक्तियो के लिए सर्वत्र सुख है और दु.खी व्यवियो के लिए सर्वत्र दु.ख।" मैने इस तथ्य की परीक्षा करने की ठानी। मै वहा से चलकर इस नगर में आया। अपने विद्या-बल से मै कुष्टी बना। चौराहे पर आकर बैठा। उसी समय राजपुरुषों ने आकर मुझे उठा लिया और राजा के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। देखते-देखते ही मेरा तेरे साथ विवाह हो गया। मुझे इसके तात्पर्य का पता नही है। मैने ही तेरी दु.खद परीक्षा की थी, किन्तु, तू अपने लक्ष्यसे विचलित नही हुई। तू धन्या है, व श्लाघनीया है। मै भी धन्य हू और मेरा राज्य भी कृतार्थ है। मेरा जीवन सफल हो गया कि मुझे तेरे जैसे शील-सम्पन्न नारी-रत्न की अनालोचित ही प्राप्ति हुई।

राजकुमारी को अपने कानो पर विश्वास नही

हो रहा था। किन्तु, उसे दृढ विश्वास था, शील का सूर्य सदैव चमकता रहता है। यह जो अप्रत्याशित उपलब्धि हुई है, उसमे मेरा सतीत्व ही निमित्त बना है। राजकुमारी ने शालीनता के साथ राजा मणिचूड के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—"यह सब धर्म का ही सुपरिणाम है। पूर्व जन्म में मैंने जो भी शुभ अनुष्ठान किया था, उसी के अनुसार मुझे आप जैसे पति प्राप्त हुए है।"

दम्पती मे खुलकर बातें हुईं। एक-दूसरे ने एक-दूसरे के हृदय को समझा और परिस्थितियो की भी जानकारी प्राप्त की। राजा मणिचूड ने अपने विद्या-बल से वहा एक सात मंजिल का भव्य आवास खडा कर दिया। दोनो वहा सुखपूर्वक रहने लगे। मणिचूड ने मदनावती से कहा—"मैं श्वशुर से मिलना चाहता हू और उन्होने जो तेरे साथ व्यवहार किया है, उसका परिणाम भी उन्हें भुगताना चाहता हू। कैसे मिलना चाहिए, तू भी मार्ग सुझा।"

मदनावती ने तत्काल सुझाव दिया—"पिताजी को आप एक किसान के वेष मे बुलायें। उनका अहं चूर-चूर हो जायेगा।"

मणिचूड ने विद्या का स्मरण किया और विशाल

सेना की विकुर्वणा कर सारे नगर को घेर लिया। राजा रिपुमर्दन के पास अपना एक चतुर दूत भेजा। राजा के पास आकर उसने सारा वृत्तान्त बतलाते हुए कहा—"यदि आप अपना कुशल-मंगल चाहते हैं, तो किसान के वेष में हमारे स्वामी राजा मणिचूड़ के चरणों में उपस्थित हो जाएं, अन्यथा कडवा फल भोगना पड़ेगा।

राजा रिपुमर्दन की भुजाएं फड़क उठीं। ज्यों ही उसने कुछ कहना चाहा, मंत्री ने कहा—"यह रोष का समय नहीं है। समान शक्ति-सम्पन्न के साथ भी रोष उपयुक्त नहीं रहता, वहाँ यह राजा तो हमारे से अधिक बली है और विद्याधर है। अपने राज्य व प्राणों की रक्षा के लिए यही उचित है कि आप दूत का कथन स्वीकार कर लें।"

विवशता व्यक्ति के अहं को खण्डित कर देती है। राजा उस कथन को स्वीकार कर लिया। किसान का वेष बनाकर वह राजा मणिचूड़ के पास आया और उसे प्रणाम किया। राजा मणिचूड़ ने राजा रिपुमर्दन का स्वागत किया। उसी समय उसने किसान के कपड़े खुला डाले और अपने हाथों राजोचित वस्त्र व आभूषण पहनाये। राजा रिपुमर्दन ने इधर-उधर जब

दृष्टि दौडाई, तो राजा मणिचूड के वाम पार्श्व में बैठी हुई मद्दरावती भी दिखाई दी। राजा का हृदय खेद से भर गया। मद्दरावती ने कहा—"पिताजी! आप खिन्न न हो। जिस कुष्टी से आपने मेरा विवाह किया था, मेरे भाग्योदय से वही पुरुष इन्द्र के समान हो गया है। इन्होंने ही अपने सम्बन्ध को जानकर आप का कृपि-वेष दूर किया है।"

अपनी पुत्री का अप्रत्याशित भाग्योदय देखकर राजा रिपुमदन को बडी प्रसन्नता हुई। राजा मणिचूड से उसने चामत्कारिक सारा इतिवृत्त पूछा। मणिचूड ने विस्तार के साथ बताया। उसने अपने श्वशुर राजा रिपुमर्दन के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा—"आप धन्य है कि आपके घर ऐसी सुशीला कन्या का जन्म हुआ। मै भी धन्य हू कि मुझे भी ऐसी सहधर्मिणी विना प्रयत्न के ही प्राप्त हो गई।" उसने अपनी ऋद्धि का प्रदशन भी श्वशुर के समक्ष किया। मद्दरा-वती को लेकर वह वैताढ्य चला आया। मद्दरावती जीवन-पर्यन्त अपने पति व्रत धर्म का पालन करती रही और जैन धर्म मे अनुरक्ता रही। शुभ अध्यवसायो से अपना आयुष्य शेष कर वह देवलोक में गई।

●

: ७

धनसार

मथुरा मे धनसार श्रेष्ठी रहता था । वासठ करोड स्वर्ण-मुद्राग्रो का वह स्वामी था । अपार धन से ग्रसा-पास के क्षेत्र मे उसकी ख्याति भी बहुत थी । वह बहुत कृपण था । तिल-तुप देना भी उसे स्वीकार्य न था, अत कृपण श्रेष्ठी के नाम से भी वह पुकारा जाने लगा ।

लक्ष्मी की प्राप्ति नेक कार्यो से भी होती है ग्रौर घृणित कार्यो से भी । नेक कार्यो से प्राप्त की गई लक्ष्मी व्यक्ति के लिए दु खद नही होती, किन्तु, घृणित कार्यो से प्राप्त की गई लक्ष्मी सदैव दु'खद हुग्रा करती है । वह अधिक समय तक टिक पाए, इसमें भी सदेह ही रहता है । एक दिन धनसार श्रेष्ठी ने भूमिगत निधान को देखा । सारी सम्पत्ति कोयलो के रूप में बदल गई थी । सर्प, बिच्छु ग्रादि जहरीले जीव-जन्तुग्रो से उसका निधान भरा था । धनसार का दिल धडकने लगा । वह चिन्तातुर बैठा था । एक मुनीम ने

मुनीमने सूचित किया— 'स्थल-मार्ग से जो शकट जा रहे थे, डाकुओं ने उन्हें लूट लिया है।' धनसार को लगा जैसे किसी ने हृदय ही निकाल लिया हो।

आकर उसी समय सूचित किया—"विदेश यात्रा पर गए हुए जहाज बीच ही मे टूट गए है और सारा माल समुद्र मे समा गया है।" धनसार को एक धक्का और लगा। एक चिन्ता से तो वह मुक्त हो भी नही पाया था कि दूसरी चिन्ता ने उसे और घेर लिया। कुछ देर बाद एक मुनीम और आया। उसने सूचित किया—"स्थल-मार्ग से जो शकट जा रहे थे, डाकुओ ने उन्हे लूट लिया है।" धनसार का तो जैसे किसी ने हृदय ही निकाल लिया हो। सिर पकड कर वह अपने भाग्य को कोसने लगा। उसे अपना कुटुम्ब-निर्वाह भी असम्भव-सा लगने लगा।

अशुभ कर्मो का जब उदय होता है, व्यक्ति कुछ भी करे, उसे असफलता ही हस्तगत होती है। धनसार ने अपने पारिवारिको से दस लाख स्वर्ण-मुद्राए ऋण पर ली और देशान्तर में व्यवसाय के लिए चला। ज्यो ही उसका जहाज समुद्र में कुछ दूर जा पाया कि वह अचानक टूट गया। धनसार की सारी पूजी समुद्र मे समा गयी। एक काष्ठ-फलक उसके हाथ लगा। उसके सहारे तैरता हुआ, वह समुद्र के तट पर पहुचा। सेठ को गहराते अधेरे ने लील लिया। उसके चारों ओर निराशा के कजरारे बादल छा गए। उसकी नीद

भी हराम हो गई ।

दु ख के क्षण भी लम्बे होते है । एक दिन उसने समुद्र-तट पर ही बिताया । दूसरे दिन वह समीपवर्ती उद्यान में घूमने लगा । सहसा उसे एक मुनिवर के दर्शन हुए । वे एक आम्र तल के नीचे विराजमान थे। केवल ज्ञान से सम्पन्न उन मुनिवर के चरणो में अनेक विद्याधर बैठे थे । परम प्रसन्न मन से धनसार ने तीन प्रदक्षिणा से मुनिवर को वन्दन किया और वह भी पर्युपासना में लीन हो गया । मुनिवर ने धम देशना से उपस्थित जनता को सन्तर्पित किया । धनसार ने करबद्ध होकर प्रश्न किया—"भन्ते ! किस कम के प्रभाव से मुझे-ऋद्धि प्राप्त हुई, किस कम के प्रभाव से मेरी ऋद्धि विलीन हुई और किस कम के प्रभाव से मैं कृपण हुआ, कृपाकर मुझे बताने का कष्ट करें ।"

मुनिवर ने उत्तर दिया—"यह सब पूर्वकृत कर्मो के अनुसार ही होता है । धातकी खण्ड मे अम्बिका नगरी है । वहा दो भाई रहते थे । अग्रज सदैव दान मे अग्रणी था, किन्तु अनुज को देना नही सुहाता था। जब अग्रज दान देता था, अनुज उस पर क्रुद्ध होता था । कुछ दिना तक यही स्थिति चलती रही । अनुज ने सम्पत्ति के बटवारे का प्रस्ताव रखा । अग्रज को

उसे स्वीकार करना पड़ा । अग्रज ज्यों-ज्यों दान देता था, उसकी सम्पत्ति बढ़ती थी । अनुज अग्रज से जलने लगा । वह राजा के पास गया । उसने राजा को अपने अग्रज के विरुद्ध भड़काया । राजा ने कुछ भी चिन्तन नहीं किया । उसने अग्रज के धन को भण्डाराधीन करने का निर्देश दे दिया । अग्रज को अनुज की इस दुश्चेष्टा की जानकारी हुई, तो उसने अनुज से प्रतिशोध लेने के स्थान पर वैराग्य से भावित होकर दीक्षित होना ही उचित समझा । संयम की सम्यक् आराधना करते हुए आयु शेष कर वह प्रथम देवलोक में गया । अनुज का बहुत लोकापवाद हुआ । वह भी घर में नहीं रह सका । उसने तापसी दीक्षा ग्रहण की । अज्ञान पूर्वक कष्ट सहते हुए आयु समाप्त कर वह असुर कुमारों में देव हुआ ।

जो व्यक्ति जैसे कर्म करता है, उसे वैसे ही फल भुगतने होते हैं । असुर कुमारों से च्यवकर तू यहां धनसार श्रेष्ठी हुआ। तू ने लोगों के दान की अन्तराय दी थी; अतः यहां तू कृपण हुआ । तू अपने अग्रज के धन-अपहरण में निमित्त बना था; अतः यहां तेरा धन भी नष्ट हो गया ।

तेरे अग्रज की कथा इस प्रकार है : सौधर्म देव-

लोक से च्यवकर वह ताम्रलिप्ति में श्रेष्ठी के घर उत्पन्न हुआ। उसके पास प्रचुर सम्पत्ति थी और सभी प्रकार के सुख उपलब्ध थे। बहुत वर्षों तक उसने अपनी ऋद्धि का उपभोग किया। विरक्त होकर उसने भौतिक सुखों को ठुकरा दिया। दीक्षा ग्रहण कर तप का विशेष अनुष्ठान किया। केवल ज्ञान प्राप्त कर वह भूमण्डल पर विचार रहा है। धनसार! जिससे तू बातें कर रहा है, वह तेरा अग्रज ही है।

पूर्व जन्म का सारा वृत्तान्त सुनकर धनसार को बहुत आश्चर्य व दुःख हुआ। वह अपने अग्रज के पैरों में गिर पड़ा। अपने अपराध के लिए उसने पुनः-पुनः क्षमायाचना की। धनसार ने मुनिवर के चरणों में प्रतिज्ञा ग्रहण की—"आज से मैं किसी के भी दोषों का उद्घाटन नही करूंगा।" उसने यह भी कहा—"उपार्जित धन के चतुर्थ भाग को रखकर अन्य सारे धन का उपयोग सार्वजनिक, धार्मिक व सामाजिक कार्यों में करूंगा।" उसने श्रावक धर्म को स्वीकार किया। केवली मुनिवर को नमस्कार कर ताम्रलिप्ति नगर में लौट आया। एक शून्य घर में रात्रि-विश्राम किया। विशुद्ध परिणामों से वह कायोत्सर्ग कर रहा था। एक देव वहां आया। धनसार की दृढता की उसने परीक्षा आरम्भ

की। उसने धूल की वर्षा की। धनसार अडोल रहा। देव ने सर्प, वृश्चिक, चींटी आदि बनकर उसे काटा, फुफकारा, पर, वह अपने कायोत्सर्ग से नहीं डिगा। देव नतमस्तक हो गया। उसने धनसार की धार्मिक दृढ़ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसने धनसार से कहा— "तू मथुरा लौट जा। तुझे तेरा विनष्ट धन प्राप्त हो जाएगा।"

प्रातःकाल धनसार ने पारणा किया। अपने निवास-स्थान मथुरा आया। ज्यों ही निधान को खोला, धन से भरा हुआ मिला। उसने परिमाण के अतिरिक्त परिग्रह का सात क्षेत्रों[१] में व्यय किया। श्रावक के व्रतों का निरतिचार पालन करते हुए आयुष्य समाप्त कर वह सौधर्म देवलोक में महर्द्धिक देव हुआ। वहां से वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा और वहां कर्मों का क्षयकर केवल ज्ञान प्राप्त करेगा।

---

१. जिन-चैत्य, २. जिन-प्रतिमा, ३. जैन-साहित्य, ४. साधु, ५. साध्वी ६. श्रावक, ७. श्राविका।

लेखक की अन्य कृतियाँ

१-१०	जैन कहानियाँ	१.५०
११-२५	जन कहानियाँ	२.५०
२६	जनपद विहार	३ ००
२७	अव-स्मृति के प्रकार	१.००
२८	ऐकाह्निक पचशती	०.४०
२९	सत्यम् शिवम्	१.००
३०	जम्बू स्वामी री लूर	०.४०
३१	आत्म-गीत	०.५०

सम्पादित

१	श्री कालू यशो विलास	
२	श्री कालू उपदेश वाटिका	१२.५०
३	भरत-मुक्ति	८.००
४	अग्नि-परीक्षा	६.५०
५	आषाढभूति	२.५०
६	श्रद्धेय के प्रति	२.२५
७	नैतिक सजीवन	२ ००
८	आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन	२५ ००
९	आचार्य श्री तुलसी जीवन दर्शन	३ ५०
१०	अहिंसा पर्यवेक्ष	३.००
११	अहिंसा विवेक	६.५०
१२	अणु से पूर्ण की ओर	०.७५
१३	अणुव्रत की ओर–१	२.००
१४	अणुव्रत की ओर–२	२ ००
१५	आचार्य श्री तुलसी	२.००
१६	अन्तर्ध्वनि	०.७५
१७	नया युग : नया दर्शन	१.५०
१८	विश्व-प्रहेलिका	१५.००

आत्माराम एण्ड संस दिल्ली-६

सचित्र

जैन कहानियां

(भाग-११)

लेखक

मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम'

भूमिका

अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराजजी डी० लिट्०

सम्पादक

श्री सोहनलाल बाफणा

१६७१

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

SACHITRA JAIN KAHANIYAN
PART II
by
Muni Shri Mahendra Kumarji 'Pratham'
Rs 2.50
First Edition 1971

प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली ६

शाखाएँ
हौज खास नई दिल्ली
चौड़ा रास्ता, जयपुर
विश्वविद्यालय क्षेत्र चण्डीगढ़
अशोक मार्ग, लखनऊ
काश्मीरी गेट दिल्ली ६
चित्रकार श्री व्याम कपूर

मूल्य दो रुपये पचास पैसे
प्रथम संस्करण १९७१

मुद्रक
हरिहर प्रेस
दिल्ली ६

भूमिका

मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' द्वारा लिखित जैन कहानियाँ (भाग १ से १०) सन् १९६१ में प्रकाशित हुई। भाग ११ से २५ अब सन् १९७१ में प्रकाशित हो रहे हैं। समग्र जैन-कथा-साहित्य को शताधिक भागों में प्रस्तुत कर देने की लेखक की परियोजना है।

प्रथम १० भागों का प्रकाशन समग्र योजना के अंकन का एक मानदण्ड बन गया। आत्माराम एण्ड संस जैसे विश्रुत प्रकाशन संस्थान से एक साथ १० भागों के प्रकाशित होते ही जैन जगत् और साहित्य-जगत् में नवीन स्फुरणा-सी आ गई। हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यकारों ने माना—वैदिक कहानियाँ, पौराणिक कहानियाँ, बौद्ध कहानियाँ शृंखलाबद्ध होकर साहित्यिक क्षेत्र में कब ही आ चुकी हैं। जैन कहानियों का इस रूप में अवतरण यह प्रथम बार हो रहा है, अतः स्तुत्य है और एक दीर्घकालीन रिक्तता का पूरक है।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी ने कहा—बहुत पहले जैन समाज के अग्रणी लोगों ने मुझे कहा—जैन कथाओं को भी आप अपनी शैली और अपनी भाषा दें। मैंने कहा—जैन कथा-साहित्य मुझे मिले भी ? प्रस्तावक व्यक्तियों ने बड़े-बड़े ग्रन्थ मेरे सामने लाकर रख दिए। वे सब देखकर मैंने कहा—ये विभिन्न भाषा और विभिन्न विषयों में आबद्ध ग्रन्थ मेरी अपेक्षा के पूरक कैसे हो

सकेंगे। इन ग्रन्थो में तो प्रकीर्ण कथा-साहित्य है। मैं क तक कथा-सग्रह और कला-चयन कर सकूँगा तथा कब तक फिर उस कथा-सग्रह को अपनी भाषा और अपनी शैली दे सकूँगा। मुझे तो सगृहीत व सुनियोजित कथा-साहित्य दे। मेरी इस माँग का समाधान उनके पास नही था, अत वह बात नही रह गई। जैन कहानियों के प्रस्तुत १० भाग ज्यों ही मेरे सामने आए अविलम्ब मैं पढ़ गया। जैन कथा-साहित्य के प्रति मेरे मन मे गुरुत्व का मनोभाव भी बना। अब इन्हे मैं या कोई भी साहित्यकार आसानी से अपनी भाषा दे सकता है। जैन-कथा-साहित्य के विस्तार का अब यह समुचित धरातल बन गया है।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी से जब यह पूछा गया कि सर्वसाधारण के लिए लिखी गई इन कथा-पुस्तकों को आप और अनेकों अन्य मूर्धन्य साहित्यकार रुचि व उत्साह से पढ गए, यह क्यों ? उन्होंने बताया साहित्यकार को अपने उपन्यास व अपनी कहानियों का कथा-वस्तु भी तो दिमाग से गढनी पडती है। नवीन कथाओ का अध्ययन साहित्यकार के दिमाग को उर्वर बनाता है। नए बीज देता है। यही कारण है कि साहित्यकार इन सर्वसाधारण के लिए लिखी जैन कहानियों को अविलम्ब पढ गए। साहित्यकार के अपने इस प्रयोजन के साथ-साथ जैन कथा साहित्य की व्यापकता तो स्वत. फलित होती ही है।

जैन कहानियाँ दिगम्बर-श्वेताम्बर आदि सभी जैन मे मान्य हुई। शास्त्र सब जैन समाजो के एक भिन्न पुरातन कथा-साहित्य का उपलब्ध हो जाना सभी के लि वर्धक प्रमाणित हुआ। बच्च में जैन कहानियाँ पढने क महिलाएँ एक-एक शब्द जो पढ़ने तक हिन्दी वारा ५५

धार्मिक परीक्षाओं में इनका उपयोग हुआ। विद्यालयों के पुस्तकालयों में ये व्यापक स्तर पर पहुँची। जैन जैनेतर विद्यार्थी स्पर्धापूर्वक इन्हें प्राप्त करते और अपूर्व उत्साह से इन्हें पढ़ते। अग्रिम भागों की स्थान-स्थान से मांग आने लगी।

सर्वसाधारण प्रशस्ति के साथ विचार-जगत् से अनेक सुझाव भी आने लगे। कुछ एक लोगों ने कहा—पुस्तक-माला का नामकरण जैन कहानियाँ न होकर धार्मिक कहानियाँ या बोध कहानियाँ ऐसा कोई नाम होता, तो इसकी व्यापकता सार्वदेशिक हो जाती। कुछेक विचारकों ने सुझाया कहानियाँ वर्गीकृत होनी चाहिए थीं। प्रत्येक कहानी का ग्रन्थ-संदर्भ उसके साथ होना चाहिए था।

नामकरण के परिवर्तन का सुझाव अधिक उपयोगी नहीं लगा। सार्वजनिक या सार्वदेशिक नाम होने से ही कोई पुस्तक या कोई प्रवृत्ति सर्वमान्य व व्यापक बन जाती है, यह निरा भ्रम है। दूसरी बात, परम्परागत आधारों पर कथा-साहित्य की अनेक धाराएँ साहित्य जगत् में पहले से ही प्रसारित हो चली हैं। इस स्थिति में एक परम्परा विशेष के कथा-साहित्य को सार्वजनिकता में विलीन कर देना उस परम्परा के साथ न्यायोचित नहीं होता। ऐसा शक्य भी नहीं था। नामकरण,के बदल देने से कथा-वस्तु तो बदलती नहीं। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि किसी भी कथा-वस्तु में अपनी संस्कृति, सभ्यता और परम्परा के मूल्य प्रतिबिम्बित होते हैं। वह आधार मिटा दिया जाए, तो कथा वस्तु ही निराधार व निरर्थक बन जाती है। अस्तु, इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत पुस्तक-माला का नाम 'जैन कहानियाँ' ही अधिक संगत माना गया है।

वर्गीकरण और ग्रन्थ-संदर्भ का सुझाव शोध-विद्वानों की ओर से था। सुझाव उपयोगी तो था ही, पर, उसकी भी अपनी सीमा थी। प्रस्तुत पुस्तक-माला मुख्यतः लोक-साहित्य के रूप में प्रका-

सकेंगे। इन ग्रन्थों में तो प्रकीर्ण कथा-साहित्य है। मैं क तक कथा-सग्रह और कला-चयन कर सकूँगा तथा कब तक फिर उस कथा-संग्रह को अपनी भाषा और अपनी शैली दे सकूँगा। मुझे तो संगृहीत व सुनियोजित कथा-साहित्य दे। मेरी इस माँग का समाधान उनके पास नही था, अत. वह बात नही रह गई। जैन कहानियो के प्रस्तुत १० भाग ज्यों ही मेरे सामने आए अविलम्ब मैं पढ गया। जैन कथा-साहित्य के प्रति मेरे मन मे गुरुत्व का मनोभाव भी बना। अब इन्हें मे या कोई भी साहित्यकार आसानी से अपनी भाषा दे सकता है। जैन-कथा-साहित्य के विस्तार का अब यह समुचित धरातल बन गया है।

श्री जैनेन्द्रकुमार जी से जब यह पूछा गया कि सर्वसाधारण के लिए लिखी गई इन कथा-पुस्तको को आप और अनेकों अन्य मूर्धन्य साहित्यकार रुचि व उत्साह से पढ गए, यह क्यो ? उन्होंने बताया साहित्यकार को अपने उपन्यास व अपनी कहानियों का कथा-वस्तु भी तो दिमाग से गढनी पड़ती है। नवीन कथाओ का अध्ययन साहित्यकार के दिमाग को उर्वर बनाता है। नए बीज देता है। यही कारण है कि साहित्यकार इन सर्वसाधारण के लिए लिखी जैन कहानियो को अविलम्ब पढ़ गए। साहित्यकार के अपने इस प्रयोजन के साथ-साथ जैन कथा साहित्य की व्यापकता तो स्वतः फलित होती ही है।

जैन कहानियाँ दिगम्बर-श्वेताम्बर आदि सभी जैन समाजों मे मान्य हुई। शास्त्र सब जैन समाजों के एक भले ही न हो, पुरातन कथा-साहित्य का उपलब्ध हो जाना सभी के लिए रुची-वर्धक प्रमाणित हुआ। बच्चों मे, वृद्धो, मे युवको मे व महिलाओ में जैन कहानियाँ पढने की अद्भुत उत्सुकता देखी गई। जो महिलाएँ एक-एक शब्द जोड़-जोडकर पढती थीं, वे दशो भाग पढ़ने तक हिन्दी धारा प्रवाह पढ़ने लगी। धार्मिक प्रशिक्षण एव

शित हो रही है। अधिक से अधिक लोग इसे पढें व सात्विक प्रेरणा ग्रहण करें, यह इसका अभिप्रेत है। सर्वसाधारण को कथा की आत्मा से व उसकी रोचकता से अधिक प्रेम होता है, न कि उसके मूल ग्रन्थ और ग्रन्थकार से। किसी कथा को पढते ही शोध-विद्वान् की दृष्टि इस पर पहुँचेगी कि इस कथा का मूल आधार क्या है, वह कितना पुराना है। इस कथा-वस्तु पर अन्य किस वस्तु का प्रभाव है, अन्य परम्पराओ मे यह कथा मिलती है, या नही आदि-आदि। शोध-विद्वान् की ये मौलिक जिज्ञासाएँ सर्वसाधारण के लिए भूलभुलैया है। अस्तु, पुस्तक-माला के प्रयोजन को समझते हुए प्रत्येक कथा के साथ गवेषणात्मक टिप्पणे जोडना आवश्यक नही माना गया। फिर भी लेखक ने इन अग्रिम भागों की कथाओ के मौलिक आधार अपने लेखकीय मे बता दिए है। इससे शोध-विद्वानो को प्राथमिक दिग्दर्शन तो मिल ही जाएगा। लेखक की परिकल्पना है, इस पुस्तक-माला की सम्पूर्ति के पश्चात् समग्र कथाओ के वर्गीकृत रूप का गवेषणात्मक टिप्पणो के साथ स्वतन्त्र सस्करण पृथक् ग्रन्थ के रूप मे तैयार कर दिया जाए।

कथा-वस्तु की सरसता वढाने के लिए प्रकाशक ने प्रत्येक कथा मे घटना-सम्बद्ध एक-एक चित्र दिया है। चित्रकार ने जैन साधु की मुद्रा लेखक की वेषभूषा मे ही चित्रित की। यह स्वाभाविक भी था। पर, स्थिति यह है कि जैन साधु की कोई भी एक वेषभूषा जैन समाज मे सर्वसम्मत नही है। दिगम्बर मुनि अचेलक है। श्वेताम्बर मुनि-वस्त्र धारक है पर, उनमें भी दो प्रकार है, मुखपतिवद्ध और अमुखपतिवद्ध। श्वेताम्बर मूर्तिपूजक मुनि अमुखपतिवद्ध है तथा स्थानाकवासी और तेरापंथी मुखपतिवद्ध है स्थानकवासियों और तेरापथियों मे भी मुखपति के छोटे-वड़ेपन व आकार-प्रकार का अन्तर है। सहस्राब्दियो पूर्व के जैन साधुओ

एक विषय पकड़कर बडे-बडे साहित्यकार्य कर बताये है। भारतीय साहित्यकार शृ खलाबद्ध कार्य के पर्याप्त आदी नही बने हैं। अब वह क्रम उनमे आ रहा है, यह सन्तोष की बात है। मुनि महेन्द्र कुमार जी 'प्रथम' अपने सकल्प को परिपूर्ण कर हिन्दी जगत् को बड़ी देन देगे व जैन जगत् को अनुगृहीत करेंगे, ऐसी आशा है।

तेरापथ साधु सघ लेखको, कवियो एव साहित्यकारों का एक उर्वर धाम है। अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी के निर्देशन में अनेक धाराओ मे साहित्य कार्य चल रहा है। इसीका एक उदाहरण मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' की ये कथाकृतियाँ हैं।

-मुनि नगराज

एक विषय पढकर बडे-बडे साहित्यकार्य कर बताये है। भारतोय साहित्यकार शृंखलाबद्ध कार्य के पर्याप्त आदी नही बने हैं। अब वह क्रम उनमे आ रहा है, यह सन्तोष की बात है। मुनि महेन्द्र कुमर जो 'प्रथम' अपने सकल्प को परिपूर्ण कर हिन्दी जगत् को बड़ी देन देगे व जैन जगत् को अनुगृहोत करेगे, ऐसी आशा है।

तेरापथ साधु संघ लेखको, कवियों एवं साहित्यकारों का एक उर्वर धाम है। अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी के निर्देशन में अनेक धाराओ मे साहित्य कार्य चल रहा है। इसीका एक उदाहरण मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' की ये कथाकृतियाँ है।

-मुनि नगराज

है, पर, कथावस्तु की रोचकता पाठक को उसका अवकाश नही देती।

अम्बड़ भगवान् महावीर का परम श्रावक था। श्राविका सुलसा के सम्यक्त्व की उसने ही परीक्षा की थी और उसे भगवान् श्री महावीर का सन्देश दिया था। आगामी उत्सर्पिणी में देवतीर्थं कृत नामक बाईसवाँ तीर्थंकर होगा। जैन परम्परा मे अम्बड़ का नाम अति विश्रुत है। पर, यह परिव्राजक अम्बड से भिन्न है।

जैन-कथाओ के आलेखन का क्रम विगत एक दशाब्दी मे चल रहा है। अनचाहे ही यह लेखन का मुख्य विषय बन गया और क्रमश: अनेकानेक कथाएं सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्रान्तीय भाषाओं से रूपान्तरित होकर एक शृंखला मे सम्बद्ध होने लगी। कथाओ का पठन तथा श्रवण सर्वाधिक प्रिय था ही, पर, लेखन भी इनके साथ अनुस्यूत हो जायेगा, यह कल्पना नही थी। किन्तु, अनायास हो गया और उससे मानसिक प्रसत्ति का एक सुन्दर स्रोत फूट पडा। इस बीच प्राचीन आचार्यो के अनेकानेक कथ-सग्रह के ग्रन्थ भी देखे और उनसे कथाओ का चयन आरम्भ किया। संक्षिप्त व विस्तृत दोनों शैलियो से लिखे ग्रन्थों के स्वाध्याय से कथा-वस्तु की जानकारी मे पर्याप्त योग मिला, पर, उसकी विविधता ने उतनी ही जटिलता भी प्रस्तुत कर दी। एक ही कथा के अनेक रूप निर्णायकता में कठिनता उपस्थित कर रहे थे। अपनी मनीषा से ही किसी निष्कर्ष पर पहुँच कर आलेखन का प्रयत्न किया गया है। हो सकता है, बहुत सारे स्थलों पर मत-भिन्नता तथा परम्परा की भिन्नता भी हो, पर, सर्वसम्मतता के अभाव मे एक ही प्रकार की कथा का ग्रहण आवश्यक भी था। जहाँ तक स्वय की मान्यताओं का प्रश्न था, बहुत सारे स्थलो पर उनका आग्रह न रखकर कथा-वस्तु को ज्यों-का-त्यों रखा गया है, ताकि तात्कालीन परिस्थितियों के बारे मे पाठक अपना

है, पर, कथावस्तु की रोचकता पाठक को उसका अवकाश नही देती।

अम्बड़ भगवान् महावीर का परम श्रावक था। श्राविका सुलसा के सम्यक्त्व की उसने ही परीक्षा की थी और उसे भगवान् श्री महावीर का सन्देश दिया था। आगामी उत्सर्पिणी मे देवतीर्थ कृत नामक बाईसवाँ तीर्थकर होगा। जैन परम्परा मे अम्बड का नाम अति विश्रुत है। पर, यह परिव्राजक अम्बड से भिन्न है।

जैन-कथाओं के आलेखन का क्रम विगत एक दशाब्दी से चल रहा है। अनचाहे ही यह लेखन का मुख्य विषय बन गया और क्रमश अनेकानेक कथाए सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्रान्तीय भाषाओ से रूपान्तरित होकर एक शृंखला मे सम्बद्ध होने लगी। कथाओं का पठन तथा श्रवण सर्वाधिक प्रिय था ही, पर, लेखन भी इनके साथ अनुस्यूत हो जायेगा, यह कल्पना नही थी। किन्तु, अनायास हो गया और उससे मानसिक प्रसत्ति का एक सुन्दर स्रोत फूट पड़ा। इस बीच प्राचीन आचार्यो के अनेकानेक कथ-सग्रह के ग्रन्थ भी देखे और उनसे कथाओं का चयन आरम्भ किया। सक्षिप्त व विस्तृत दोनो शैलियो से लिखे ग्रन्थों के स्वाध्याय से कथा-वस्तु की जानकारी मे पर्याप्त योग मिला, पर, उसकी विविधता ने उतनी ही जटिलता भी प्रस्तुत कर दी। एक ही कथा के अनेक रूप निर्णायकता मे कठिनता उपस्थित कर रहे थे। अपनी मनीषा से ही किसी निष्कर्ष पर पहुँच कर आलेखन का प्रयत्न किया गया है। हो सकता है, बहुत सारे स्थलों पर मत-भिन्नता तथा परम्परा की भिन्नता भी हो, पर, सर्वसम्मतता के अभाव मे एक ही प्रकार की कथा का ग्रहण आवश्यक भी था। जहाँ तक स्वय की मान्यताओ का प्रश्न था, बहुत सारे स्थलों पर उनका आग्रह न रखकर कथा-वस्तु को ज्यों-का-त्यो रखा गया है, ताकि तात्कालीन परिस्थितियों के बारे मे पाठक अपना

निर्णय स्वतर सके :क। मैंने अपना निर्णय पाठकों पर थोपने का यत्न नहीं किया है। बहुत सारे स्थलों पर कथा-वस्तु में तनिक-सा परिवर्तन कर देने पर विशेष रोचकता भी हो सकती थी, किन्तु, प्राचीन कथाओं की मौलिकता को बनाये रखने के लिए ऐसा भी नहीं किया गया है।

जैन कथा-साहित्य जितना विस्तीर्ण है, उतना ही सरस भी है। आज तक वह आधुनिक भाषा में नहीं आया था, अतः वह अपरिचित ही रहा। मुझे यह अनुमान नहीं था कि पच्चीस भाग लिखे जाने के बाद भी उसकी थाह अज्ञात ही रहेगी। ऐसा लगता है, जैन कथा-साहित्य के छोर को पाने में अनेक वर्षों की अनवरत तपस्या आवश्यक है। आगम, निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका आदि में कथाओं का विपुल भण्डार है। रास साहित्य ने उसमें विशेषतः और अभिवृद्धि की है। ज्यों-ज्यों गहराई में पहुँचा जायेगा, त्यों-त्यों विशिष्ट प्राप्ति भी होती जायेगी तथा और गहराई में घुसने के लिए उत्साह भी वृद्धिगत होता जायेगा।

मुझे प्रसन्नता है कि जैन कहानियों का समाज के सभी वर्गों में विशेष समादर हुआ। कहना चाहिए, उसी कारण इस दिशा में निरन्तर लिखते रहने का उत्साह जगा। आरम्भ में योजना छोटी थी, पर, अब वह स्वतः काफी विस्तीर्ण हो चुकी है। पहली बार में दस भाग पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए थे और अब दूसरी बार अगले पन्द्रह भाग प्रस्तुत हो रहे हैं। इसी क्रम से बढ़ते हुए शीघ्र ही सौ भागों की अपनी मंजिल तक पहुँचाना है। भगवान श्री महावीर के २५ वें शताब्दी समारोह तक यदि यह कार्य सम्पन्न हो सका, तो विशेष आह्लाद का निमित्त होगा।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य श्री तुलसी के वरद आशीर्वाद ने साहित्य के क्षेत्र में प्रवृत्त किया और अणुव्रत परामर्शक मुनि श्री नगराज जी डी० लिट्० के मार्ग-दर्शन ने उसमें गतिशील किया।

जीवन की ये दोनों ही अमूल्य थाती है। मुनि विनयकुमारजी 'आलोक' तथा मुनि अभयकुमारजी का सतत साहचर्य-सहयोग लेखन में निमित्त रहा है।

१५ नवम्बर,७०
दिल्ली

—मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

अनुक्रम

अम्बड़

श्रीवास नगर मे विक्रमसिंह राजा राज्य करता था। एक दिन राजा सभासदों में घिरा राज-सभा में बैठा था। सहसा एक अपरिचित व्यक्ति वहाँ आया। राजा ने उसके बारे में जिज्ञासा की और आने का प्रयोजन पूछा। आगन्तुक ने अपना परिचय देने से पूर्व एक वाक्य कहा—"गोरखयोगिनी की ध्यान-कुण्डलिका के समीप एक निधान है।" निधान का नाम सुनते ही राजा के कान खड़े हो गये। उसने तत्काल प्रश्न किया—"उस निधान के बारे मे तुझे क्या जानकारी है और वह कहाँ से प्राप्त हुई ?"

आगन्तुक सज्जन ने अपना परिचय देते हुए सारी घटना पर प्रकाश डाला। उसने कहा—"मेरा नाम कुरुवक है। मै स्वनाम धन्य महाराजा अम्बड़ का पुत्र हूँ। आप सभी मेरे पिता के पौरुष, साहस और उदारता से परिचित ही होगे। उनका राज्य कितना विस्तृत था, यह भी सुविश्रुत है। किन्तु, पूर्व के इतिहास से

सम्भवतः आप लोग अपरिचित है। मेरे पिताजी का पूर्व जीवन बहुत घटनात्मक है। वे एक निर्धन व साधारण व्यक्ति थे। उन्होंने धनोपार्जन के अथक प्रयत्न किये थे, किन्तु, वे उनमें सफल नहीं हो पाये।''

चारों ओर से एक ही साथ एक प्रश्न आया—"तो फिर वे एक महान् राजा और अद्भुत ऐश्वर्य-सम्पन्न कैसे बने ?''

कुरुवक ने कहा—"मैं यही बताने के लिये आपको इस राज-सभा में उपस्थित हुआ हूँ। आप सुनें।'' सभी व्यक्ति एकाग्र होकर बैठ गये। कुरुवक ने कहना आरम्भ किया—"मेरे पिता जन्म से ही निर्धन थे। उन्होंने धनोपार्जन के लिये मंत्र, तंत्र, औषधि आदि के अनेक प्रयत्न किये, किन्तु, वे सफल न हो सके। एक बार वे घूमते हुए धनगिरि पर पहुँच गये। वहाँ उनका गोरखयोगिनी से साक्षात्कार हुआ। उन्हे प्रणाम कर वे उनके समीप ही बैठ गये। गोरखयोगिनी ने उनसे उनका परिचय और आने का कारण पूछा। पिताजी ने एक ही वाक्य कहा—'आप ऐसा वरदान प्रदान करें, जिससे मेरा मनचाहा हो सके।' योगिनी का हृदय वात्सल्य से ओत-प्रोत था। उसने कहा—'तुम्हारी क्या कामना है ?' पिताजी ने अत्यन्त विनम्रता से

कुरुवक राजा विक्रमसिंह के दरवार मे

कहा—'मुझे लक्ष्मी चाहिये।' योगिनी ने कहा—'लक्ष्मी की प्राप्ति साहस, सूझबूझ व पराक्रम के बिना नहीं होती।' पिताजी ने दृढ़ता के साथ निवेदन किया—'माताजी! आप जो भी निर्देश करेंगी, मैं करने को प्रस्तुत हूँ। आपके आशीर्वाद से मैं किसी भी क्षेत्र में अपूर्णता का परिचय नहीं दूंगा।'

गोरखयोगिनी अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने कहा—'यदि तू मेरे सात आदेशों को पूर्ण कर सके तो तुझे अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हो सकती है।' पिताजी ने दृढ़तापूर्वक सब स्वीकार किया।

❀ ❀ ❀

शतशर्करा वृक्ष का फल

बातों के माध्यम से गोरखयोगिनी ने पिताजी की गहराई को आँक लिया था। वह पूर्ण विश्वस्त हो गई। उसने पहला आदेश देते हुए कहा—'यहाँ से पूर्व में गुणवदना नामक एक वाटिका है। उस वाटिका में शतशर्करा नामक एक वृक्ष है। उसका फल मेरे सामने प्रस्तुत कर।'

अम्बड तत्काल वहाँ से चला। यद्यपि वह वाटिका, वृक्ष और उसके फल से सर्वथा अनभिज्ञ था, किन्तु, मन मे विशेप उत्साह था, अत. उसे कुछ भी असम्भव प्रतीत नही हो रहा था। वह रात भर चलता रहा। प्रात.काल कुकुम मण्डल के समीपवर्ती सरोवर पर पहुँचा। वहाँ उसने कुछ विश्राम किया। चारों ओर उसने नजर डाली। एक अद्भुत दृश्य दिखाई दिया। पुरुप सिर पर घडे रखकर पानी ला रहे है और महिलाएँ घोडो पर सवार होकर इधर-उधर घूम रही है। अम्बड़ के लिये यह महान् आश्चर्य था। उसके मन में

नाना जिज्ञासाएँ उभर रही थी। सहसा उसे एक पुरुष मिला। उससे उसने अपनी जिज्ञासा का समाधान चाहा। पुरुष ने धीमे स्वर से कहा—'मौन रखो। यदि अपना यह वार्तालाप किसी स्त्री के कानों तक पहुँच जायेगा तो लेने के देने पड़ जायेंगे।' अम्बड़ ने कहा—'स्त्रियों से भय कैसा ?' एक वृद्धा के कानों में ये शब्द पड़े। वह उसका ज्यों ही उत्तर दे, उसी समय एक राजसवारी उधर से आ निकली। एक स्त्री हाथी पर कसे एक स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान थी। उसका तेजस्वी चेहरा विशेष चमक रहा था। वह अपनी भृकुटि से पुरुष जाति का उपहास करती हुई इधर-उधर देख रही थी। उसके मस्तक पर छत्र था। दोनों ओर चमर वीजे जा रहे थे। उसके हाथ में एक स्वर्ण-दण्ड था, जो विशेष चमक रहा था। हाथी के आगे-पीछे स्त्रियों की एक अनुशासित बड़ी सेना चल रही थी। अम्बड़ तो यह देखते ही अवाक् रह गया। वृद्धा ने अम्बड़ के भावों को पढ़ा। ज्यों ही सवारी आगे निकल गयी, उसने कहा—'क्या अम्बड़ क्षत्रिय तू ही है ? तू आज यहाँ आयेगा, यह मैं कभी से जानती थी। तुझे यदि अपनी जिज्ञासाओं का समाधान पाना है तो मेरे घर चल। मैं तुझे सब कुछ बतलाऊँगी।'

अम्वड़ ने अपना साहस बटोरा और वृद्धा के साथ उसके घर की ओर चल पड़ा। वृद्धा एक भव्य महल पर आकर रुकी। महल में अपार वैभव था। अम्वड़ धीरे-धीरे चलकर महल के आँगन में आया। धवल गृह के मण्डप में एक अत्यन्त सुरूपा षोडशी क्रीड़ा में लीन थी। उसके लावण्य के समक्ष संसार का लावण्य भी हतप्रभ था। वह अकेली बैठी सूर्य, चन्द्र, मंगल और राहु; चार गेंदों से खेल रही थी। वह चारों गेंदों को आकाश में उछालती हुई अपना मनोरंजन कर रही थी। उसकी कोई गेंद गिरने नहीं पाती थी। अम्बड़ के मन में जिज्ञासाओं का अम्बार लग गया। वह पूछने को ज्यों ही उतावला हुआ, त्यों ही वृद्धा ने कहा—"अम्बड़! तू गोरखयोगिनी के आदेश से शत-शर्करा वृक्ष का फल लेने के लिए आया है न? जब तक तू उस फल को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक तू यहाँ आनन्दपूर्वक रह और मेरी पुत्री चन्द्रावती के साथ क्रीड़ा कर।"

असमंजस में तैरता-डूबता अम्वड़ कुछ सोच ही रहा था कि चन्द्रावती ने कहा—"तुम चिन्ता-मग्न क्यों हो रहे हो? मैं तो तुम्हारे जैसा साथी खोज रही थी। आज हम दोनों आनन्द से खेलेंगे। अपनी क्रीड़ा

का नियम एक ही है कि गेंद को उछालते हुए व पकड़ते हुए जिसके हाथ से गेंद भूमि पर गिर जाए, वह हारा। हारने वाले को जीतने वाले की चरण-सेवा करनी होगी।" अम्बड ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। खेल आरम्भ हुआ। चन्द्रावती चारो गेंदो को आकाश में उछालने लगी। जब वह सूय गेंद को आकाश मे फेंकती, दिन के सदृश प्रकाश चारो ओर फैल जाता। जब वह चन्द्र गेंद को आकाश मे फेंकती पूर्णिमा के प्रकाश से सारा भू-मण्डल आलोकित हो जाता। जब वह मगल और राहु गेंद को आकाश में उछालती, दोनो सध्या के प्रकाश में जैसे कि सारा विश्व स्नान कर रहा है, ऐसा आभास होने लगता। चन्द्रावती के हाथ सधे हुए थे। गेंद भूमि पर नही गिरी। कुछ समय बाद अम्बड ने कहा—'मुझे भी अवसर दो।' चन्द्रावती ने चारो गेंद उसके हाथ मे थमा दी। सूय कन्दुक को हाथ मे लेकर ज्यों ही अम्बड ने उसे देखा, सूय-किरणो से वह व्याकुल हो उठा। वह गेंद को उछाल न सका। मूर्च्छित होकर सूय-विम्ब मे गिर पडा। चन्द्रावती ने सूर्य कन्दुक को आकाश मे उछाल दिया। उस गेंद के साथ अम्बड भी आकाश में स्थिर हो गया। चन्द्रावती अपने अ य कार्य में लग गई।

नागड़ सारथि सूर्य-मण्डल के समीप आया। मूर्च्छित अम्वड़ को देखकर उसका दिल करुणा से भर आया। अमृत के छींटे डालकर सचेत करने के अभिप्राय से नागड़ चन्द्र-मण्डल की ओर दौड़ा। किन्तु, उसे चन्द्र-मण्डल दिखाई ही नहीं दिया। उसने रोहिणी से पूछा। रोहिणी फूट-फूटकर रोने लगी। नागड़ से सहायता की याचना करते हुए उसने कहा—"मेरे पति चन्द्रदेव का चन्द्रावती ने अपहरण कर लिया है। वे उसकी कारा में वन्द हैं। मैं उनके विरह में कलप रही हूँ। मेरे इस दुःख का निवारण करो।" नागड़ ने रोहिणी को आश्वस्त किया और चन्द्रावती के घर की ओर चल पड़ा।

समय पर जिसे अवसान मिल जाता है, वह दूसरे पर आघात कर ही बैठता है। चन्द्रावती ने नागड़ को अपनी ओर आते देखा तो नागपाश वाण छोड़ा। नागड़ तत्काल चारों ओर से वंधकर गिर पड़ा। चन्द्रावती अपनी माता भद्रावती के साथ आमोद-प्रमोद करने लगी। नागड़ की वहिन सर्पदष्टश्रृंखला ने जव यह उदन्त सुना तो भाई के सहयोग में वह दौड़ी आई। उसने तत्काल एक अन्य वाण चलाया और नागपाश को तोड़ डाला। क्रुद्ध नागड़ चन्द्रावती की ओर झपटा।

नारी के काम-बाण तुझे विद्ध नहीं कर सकेंगे।"

अनालोचित व आकस्मिक वरदान-प्राप्ति से अम्बड़ का पुलकित होना सहज ही था। उसने सूर्य के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की। सूर्य उससे विशेषतः प्रसन्न हुआ। उसने उसे आकाशगामिनी और इन्द्रजाल; दो विद्यायें भी प्रदान कीं। सूर्य की आज्ञा से नागड़ ने शतशर्करा वृक्ष का फल लाकर भी अम्बड़ को दिया, जिसकी खोज में वह आया था। शतशर्करा वृक्ष के फल का अमोघ प्रभाव होता है। उसे अपने पास रखने वाला सदैव सुखी ही रहता है।

नागड़ ने अम्बड़ को भूमि पर लाकर छोड़ दिया। अम्बड़ ने सूर्य द्वारा दी गई विद्याएँ साधीं। चन्द्रावती को चमत्कार दिखाने के अभिप्राय से उसने महादेव का रूप धारण किया। चन्द्रावती के घर आया। प्रत्यक्षतः महादेव को अपने गृहांगण में पाकर चन्द्रावती पुलकित हो उठी। उसने सम्मुख जाकर साष्टांग प्रणाम किया और आभार व्यक्त करते हुए कहा—"आज मेरा घर पवित्र हो गया है और आपकी इस महती कृपा से मेरा जन्म भी कृतार्थ हो गया है।" चन्द्रावती भाव-विभोर होकर अपने को कृतकृत्य मान रही थी। उसी समय महादेव ने करुण स्वर

मे रोना आरम्भ कर दिया। चन्द्रावती उसका अर्थ नहीं समझ पाई। उसने कहा—"भगवन् ! ससार के पालक, पोषक व सरक्षक तो आप ही हैं। आपके लिए कौनसा दुख आ पडा, जिससे आप कलप रहे हैं ?"

झरती हुई आँखो से महादेव ने कहा—"पूछ मत ! मैं अत्यन्त दुखी हो गया हूँ। मेरी प्राण-वल्लभा पार्वती मृत्यु की ग्रास हो चुकी है। मैं इस दुख को कैसे भूल सकता हूँ।"

चन्द्रावती ने महादेव को सान्त्वना देते हुए कहा—"प्रभो ! मेरे योग्य कोई आदेश करें। यदि मैं आपके इस दुख को तनिक भी घटा सकूँगी, तो मैं अपना अहो-भाग्य समझूँगी।"

महादेव ने अपने को कुछ सम्भालते हुए कहा—"तू पार्वती का स्थान ग्रहण कर, मैं दुख-मुक्त हो सकूगा।"

चन्द्रावती ने तत्काल कहा—"प्रभो ! मैं तो अपवित्र मानुषी हू। आपके योग्य कैसे हो सकती हू ?"

महादेव ने दृढता के साथ कहा—'नहीं, तू मेरे योग्य ही है। मैंने जो यह प्रस्ताव तेरे सम्मुख रखा है, वह चिन्तनपूर्वक ही रखा है। तू इसे स्वीकार

चन्द्रावती महादेव का स्वागत करती हुई

से कहा—"स्वामिन् ! जनता के समक्ष यह कैसा हास्य ?" उसका वाक्य पूरा हो भी नही पाया था कि नन्दी (वृषभ) ने भी उस पर दो-चार लाते लगा दी। चन्द्रावती की आखो से अश्रुधारा वह निकली। दो-चार क्षण बाद जब वह आकाश की ओर देखती है तो महादेव भी गायब थे। उसके तो पैरों से धरती खिसक गई। उपस्थित जन-समूह ने चन्द्रावती पर व्यग कसते हुए कहा—"क्यों, कैलाश से अभी लौट आई ? महादेव के पास क्षण-भर भी नही रुकी ?"

अम्बड़ ने शिव-रूप का सहरण किया और मनुष्य-रूप धारण किया। चन्द्रावती ने जब उसे देखा तो काटो तो खून नही। मृत्यु से भी अधिक वेदना का उसे अनुभव हुआ। अम्बड़ ने तत्काल कहा—"सूर्य-मण्डल को जीत कर मैं आ गया हू, अत पुन क्रीडा आरम्भ करो।" चन्द्रावती का खून खौलने लगा। अपने रोप को दबाने का उसने प्रयत्न किया, पर, उसके मुह से कुछ शब्द निकल ही पड़े। उसने कहा—"आपने अपने को क्यो छुपाया ? क्या सचमुच मे ही गवे हो ?" अम्बड ने भी तत्काल आख दिखाई और कहा—"यदि सम्भल कर नहीं बोलेगी तो न मालूम और भी क्या-क्या विपदाये झेलनी पडेगी।" चन्द्रा-

कर ले।"

चन्द्रावती ने कुछ लज्जावनत होकर स्वीकृति की भाषा में कहा—"मेरा अहोभाग्य है।"

महादेव ने अगला प्रस्ताव रखा—"मेरे साथ विवाह करते समय तुझे भद्र होना होगा, फटे-पुराने व मैले-कुचेले वस्त्र पहनने होंगे, मुंह पर कालिख पोतनी होगी और गर्दभारोहण कर मेरे साथ चलना होगा।" चन्द्रावती ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। मध्याह्न का समय निश्चित हुआ। चन्द्रावती ने समय से पूर्व ही सारे कार्य सम्पन्न कर लिये। गर्दभ पर आरोहित होकर वह महादेव की प्रतीक्षा करने लगी। शिव रूप धारी अम्बड़ समय पर वहां आ गया। जनता का विशाल समूह शिव-चन्द्रावती का विवाह देखने के लिए वहां एकत्र हो गया। जन-जन के मुख पर एक ही चर्चा थी, चन्द्रावती का अहोभाग्य है कि शिव के साथ इसका विवाह सम्पन्न हो रहा है। यह अब कैलाश चली जायेगी। जन-वाणी को सुनकर चन्द्रावती भी मन-ही-मन आह्लादित हो रही थी। आह्लाद सहसा विषाद में बदल गया। गर्दभ भड़क उठा और उसने चन्द्रावती पर दो-चार दुलत्तियां चला दीं। दर्शक खिल-खिलाकर हंस पड़े। चन्द्रावती शरमा गई। उसने शिव

से कहा—"स्वामिन्! जनता के समक्ष यह कैसा हास्य?" उसका वाक्य पूरा हो भी नहीं पाया था कि नन्दी (वृषभ) ने भी उस पर दो-चार लातें लगा दीं। चन्द्रावती की आंखों से अश्रुधारा बह निकली। दो-चार क्षण बाद जब वह आकाश की ओर देखती है तो महादेव भी गायब थे। उसके तो पैरों से धरती खिसक गई। उपस्थित जन-समूह ने चन्द्रावती पर व्यंग कसते हुए कहा—"क्यों, कैलाश से अभी लौट आई? महादेव के पास क्षण-भर भी नहीं रुकी?"

अम्बड़ ने शिव-रूप का संहरण किया और मनुष्य-रूप धारण किया। चन्द्रावती ने जब उसे देखा तो काटो तो खून नहीं। मृत्यु से भी अधिक वेदना का उसे अनुभव हुआ। अम्बड़ ने तत्काल कहा—"सूर्य-मण्डल को जीत कर मैं आ गया हूं; अतः पुनः क्रीड़ा आरम्भ करो।" चन्द्रावती का खून खौलने लगा। अपने रोष को दबाने का उसने प्रयत्न किया, पर, उसके मुंह से कुछ शब्द निकल ही पड़े। उसने कहा—"आपने अपने को क्यों छुपाया? क्या सचमुच में ही गधे हो?" अम्बड़ ने भी तत्काल आंख दिखाई और कहा—"यदि सम्भल कर नहीं बोलेगी तो न मालूम और भी क्या-क्या विपदायें झेलनी पड़ेंगी।" चन्द्रा-

वती मन मसोस कर रह गई। वह भय स कापने लगी। पुन कन्दुक-क्रीडा आरम्भ हुई। अम्वड ने चन्द्रावती को जीत लिया। वह दीन-वदना देखती ही रह गई। अम्वड ने कहा—"या तो मेरी चरण-सेवा करो या मेरे साथ विवाह करो।" चन्द्रावती ने कहा—"जो आदेश होगा, करने को प्रस्तुत हू।" दोनो स्नेह-सूत्र मे आवद्ध हो गये।

नगर की विपरीतता के वारे मे अम्वड की जिज्ञासा अभी भी शान्त न हो पाई थी। चन्द्रावती से उसने पूछा तो उसने सविस्तार प्रकाश डालते हुए कहा—"यह नगर मैंने ही अपनी शक्ति से वसाया है। मेरी इच्छा के विपरीत यहा का एक पत्ता भी नही हिल सकता। मैं जैसा चाहती हू, वैसे ही आचरण के लिए सबको विवश कर देती हू। आपको जो कुछ भी विपरीत मालूम देता है, उसके लिए मैं ही उत्तर-दायिनी हू।"

अम्वड ने पुन पूछ लिया—"तेरे पास वह कौन-सी विचित्र शक्ति है, जिसके वल पर तू सबको चाहे जैसा नाच नचा रही है? उसका रहस्य भी बता।"

चन्द्रावती ने अपने रहस्य का उद्घाटन करते

हुए कहा—"स्वामिन् ! मेरे पास चार विद्याएं हैं। उनके नाम हैं : १. आकाशगामिनी, २. चिन्तितगामिनी ३. स्वरूप-परावर्तिनी और ४. आकर्षिणी । ये आपके चरणों में समर्पित हैं।"

पराक्रमी अम्बड़ और शक्तिशालिनी चन्द्रावती के सम्मिलन से दोनों के ही दिन आनन्दपूर्वक बीतने लगे । कुछ दिन वहां रह कर सुवर्ण, रत्न आदि बहु-मूल्य सामग्री लेकर व चन्द्रावती को भी साथ लेकर उसने नगर की ओर प्रस्थान किया और गोरखयोगिनी के पास आया । शतशर्करा वृक्ष का फल उसके चरणों में उपहृत किया । योगिनी ने प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया । अम्बड़ अपने घर लौट आया ।

❀ ❀ ❀

आन्धारिका कन्या

कुछ दिन बाद अम्बड पुन गोरखयोगिनी के चरणों मे उपस्थित हुआ। करबद्ध होकर उसने दूसरा आदेश देने के लिए प्रार्थना की। योगिनी ने कहा—"दक्षिण दिशा में विशाल समुद्र के बीच हरिद्ध्य नामक द्वीप है। वहा कमलकाञ्चन योगी रहता है। उसकी कन्या का नाम आन्धारिका है। उसे तू ले आ।"

अम्बड ने योगिनी का आदेश शिरोधार्य किया और तत्काल उस दिशा मे गगन-मार्ग से प्रस्थान कर दिया। कुछ ही समय मे वह द्वीप के उपान्त मे पहुँच गया। फल-फूलो से शोभित एक उद्यान मे उसने विश्राम लिया। वह सोचता रहा, कमलकाञ्चन योगी की कुटिया का मुझे कैसे पता चलेगा ? कुछ क्षण वह वहा रुका और उद्यान मे आगे बढ गया। सामने से आता हुआ एक व्यक्ति उसे मिला। अम्बड उससे कुछ पूछे, उससे पहले ही आगन्तुक सज्जन बोल उठा—"अम्बड ! तुम तो इस वन में बहुत दिनो बाद आये ?"

एक अपरिचित व्यक्ति के मुंह से अपना नाम व अपनत्व-भरी बातें सुनकर अम्बड़ चकित हो गया। वह उससे बहुत कुछ पूछना चाहता था, पर, सब कुछ गौण कर उसने एक ही प्रश्न पूछा—"मैंने सुना है, यहां कमलकाञ्चन योगी रहते हैं। उनका आश्रम कहां है ? मैं उनसे मिलने के लिए आया हूँ।"

आगन्तुक सज्जन ने कहा—"वह मैं ही हूँ।"

दोनों का वार्तालाप चल ही रहा था, कुछ दूर से एक कन्या के रोने की आवाज आई। कमलकाञ्चन योगी अपनी कुटिया में गया। आन्धारिका रो रही थी। योगी ने वात्सल्य-भरे शब्दों में उससे रोने का कारण पूछा। आन्धारिका ने कहा—"पिताजी! जानते हुए भी मुझे क्यों पूछ रहे हैं ? यह आगन्तुक बड़ा धूर्त है। इसका नाम अम्बड़ है और यह मेरा अपहरण करने के लिए आया है।" योगी ने सहज भाषा में उत्तर दिया—"मेरी विद्यमानता में कोई भी तेरा अपहरण नहीं कर सकता।" अम्बड़ को भी यह सारी बात सुनाई दे रही थी। अपने गुप्त रहस्य को प्रकट होते देखकर वह बहुत चमत्कृत हुआ। योगी कुटिया से बाहर आया। उसने अम्बड़ की ओर घूरकर देखा और पूछा—"क्या तुम गोरखयोगिनी के द्वारा यहां भेजे गये हो ?" अम्बड़ ने

इसे स्वीकार किया ।

योगी के दो पत्निया थी । उनके नाम थे १ कागी और २ नागी । योगी ने अम्वड को अपने अनुचर के साथ अपने घर भेज दिया । दोनो ही पत्नियों ने अम्वड को गोरखयोगिनी के कुशल-प्रश्न पूछे । अपने हाथो से दोनों ने उसको मनोहर भोजन कराया । अम्वड कुछ विश्राम कर रहा था कि सहसा कुर्कुट हो गया । कागी और नागी, दोनो न मार्जार वनकर क्रूरतापूर्वक कुर्कुट को यातना देनी आरम्भ की । कुर्कुट (अम्वड) अत्यन्त परेशान हो गया । योगी घर आया । कुर्कुट को सम्वोधित कर उसने कहा—"तूने मेरी आधारिका कन्या के अपहरण का प्रयत्न करना चाहा, उसका ही फल चख रहा है ।" अम्वड विवश था ।

दु ख में व्यतीत होने वाला थोडा-सा समय भी बहुत लम्बा हो जाता है । अम्वड ने कुछ दिन वही गुजारे । एक दिन योगी ने अपनी पत्नियो से कहा—"इसे अब वन मे छोड आओ । उन्होंने वैसा ही किया । मार्जार की यातना से उसका छुटकारा हो गया । वन में वह निर्भय घूमने लगा । एक दिन पानी पीने के लिए वह निकटवर्ती वापिका मे गया । जी भरकर पानी पिया और तृप्त होकर बाहर आया । उसका कुर्कुट का

रूप छूट गया और वह पुनः मनुष्य हो गया। मणि, मंत्र और औषधियों का प्रभाव अचिन्तनीय होता है।

अम्बड़ वन में घूम रहा था। एक बार उसे रात में किसी स्त्री के रोने की आवाज सुनाई दी। वह सोचने लगा, इस भयावने जंगल में स्त्री का रुदन एक आश्चर्य है। शब्द के अनुसार वह वहां पहुंचा। एक स्त्री रो रही थी। आत्मीयताभरे शब्दों में अम्बड़ ने रोने का कारण पूछा। उस स्त्री ने अपनी राम-कथा सुनानी आरम्भ की। उसने कहा—"रोलगपुर नगर में हंस राजा राज्य करता है। उसकी रानी का नाम श्रीमती है। मैं उनकी ही पुत्री हूँ। मेरा नाम राजहंसी है। मैं जब यौवन में आई, मेरे पिता ने राजकुमार हरिश्चन्द्र को मेरे पाणि-ग्रहण के लिए सादर आमंत्रण दिया। वह विवाह के दिन नियत समय पर पहुँच भी गया। पाणि-ग्रहण विधि ही केवल शेष थी। सभी पारिवारिक और राजपुरोहित आनन्दमग्न इधर-उधर घूम रहे थे। मैं अपने वस्त्राभूषणों से सज्जित होकर आई। मैंने सूर्य द्वारा दी गई कंचुकी भी पहन रखी थी। सहसा एक दुष्ट पुरुष कंचुकी को लेने के अभिप्राय से वहाँ आ धमका। उसने मुझे आकाश में उठा लिया। कंचुकी छीनने के लिए उसने विशेष बल का

प्रयोग किया। हम दोनों की छीना-झपटी होती रही। किन्तु, मैंने कंचुकी को नहीं छोड़ा। उसने क्रुद्ध होकर मुझे इस जंगल में गिरा दिया और स्वयं यहीं-कहीं चला गया। अब जब भी मुझे उसकी स्मृति होती है, रोमांच हो उठता है और मैं सिहर उठती हूँ। न मालूम किस समय वह नराधम यहां आ धमके और मेरे लिए कांटे बिखेर दे। महाभाग ! मेरे रुदन का यही कारण है।"

बात की थाह में जाने का अम्बड़ ने विशेष उपक्रम किया। उसने पूछा—"सुभगे ! यह भी बताओ, तुम्हें यह सूर्य-कंचुकी कैसे प्राप्त हुई !"

राजहंसी ने सात्विक गौरव की अनुभूति करते हुए कहा—"बाल्य-जीवन को लांघकर जब मैं कुछ सयानी हुई, मेरे माता-पिता ने सरस्वती पण्डिता के समीप मेरे अध्ययन की व्यवस्था की। मेरे साथ सात अन्य कुलीन कन्याएं भी अध्ययन में निरत थी। हम आठों में बड़ा स्नेह था। हमारा अध्ययन व्यवस्थित चलता था। एक बार रात में हम पाठशाला में ही सो रही थी। मध्य रात्रि में पण्डिता सरस्वती ने भूमि पर एक मण्डल उत्कीर्ण किया। उसके आह्वान पर चौसठ योगिनियां वहां आई और क्रीड़ा करने लगी। जब वे सभी विशेष आमोद-प्रमोद में थी, पण्डिता ने

उनसे सिद्धि की याचना की। योगिनियों ने उससे कहा—"पहले तुम हमें पिण्ड अर्पित करो, फिर सिद्धि कोई बड़ी बात नहीं है।" पण्डिता सरस्वती ने हमारी ओर संकेत करते हुए कहा—"ये आठ कन्याएं इसी उद्देश्य से यहाँ लाई गई हैं। आप मुझे विधि-विधान बताएं, जैसा निर्देश होगा, सारा कार्य उसी प्रकार सम्पन्न हो जायेगा।" सभी योगिनियों के मुँह में पानी भर आया। उन्होंने कहा—"कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का रविवार ही सब प्रकार से श्रेष्ठ दिन है। उस दिन मध्याह्न में हम तेरे यहाँ आयेंगी। तुम इन्हें नैवेद्य सहित तैयार रखना।" योगिनियां अन्तर्हित हो गईं।

"सहसा हमारी आँखें खुल गईं। गुप्त रूप से हमने वह वार्तालाप सुना। बलि का नाम सुनते ही हमारा कलेजा कांप उठा। सभी सखियों ने मिलकर उसके प्रतिकार के लिए चिन्तन किया। मैंने उनसे कहा—राजा के समक्ष यह सारा उदन्त प्रस्तुत किया जाये और हम सब को सूर्य की आराधना करनी चाहिए। हमारी सुरक्षा का इससे सुन्दर अन्य कोई भी उपाय नहीं है। सभी सहेलियों ने मेरे इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। प्रातः हम आठों ही राजा के पास पहुंचीं। सारी घटना उन्हें सुनाई। राजा का खून

खोलने लगा। उन्होंने अपने अनुचरों को सरस्वती पण्डिता का तत्काल वध करने का निर्देश दिया। मैंने पिताजी से निवेदन किया—"यह ब्राह्मणी बड़ी दुष्टा है। इसे जो भी दण्ड दिया जाये, थोड़ा ही है, किन्तु, इसे क्रुद्ध करने की अपेक्षा इससे अपना संरक्षण कर लिया जाये, यही अधिक उचित है।" पिताजी ने पूछा—"तो ऐसा अन्य क्या उपाय हो सकता है?" मैंने अपनी योजना पर प्रकाश डालते हुए कहा—"हम सूर्य की आराधना करेंगी। सूर्य के अनुग्रह से निश्चित ही हमारी विजय होगी।"

"अभिभावकों व गुरुजनों का आशीर्वाद कार्य की असम्भवता को भी सम्भवता में परिवर्तित कर देता है। पिताजी के शुभाशीष से हम सूर्य की आराधना में प्रवृत्त हुई। निश्चित समय पर हमें सफलता मिली। सूर्य देव ने प्रत्यक्ष होकर हमें दर्शन दिये। उन्होंने मुझे कंचुकी प्रदान की और सहेलियों को सात अद्भुत गुटिकाएं। सूर्य देव ने इन वस्तुओं के प्रयोग के बारे में प्रकाश डालते हुए कहा—"पुत्रियो, वह दुष्टा पण्डिता जब योगिनी द्वारा दी गई साड़ी पहने, तब राजकुमारी को यह कंचुकी पहननी चाहिए और शेष तुम सबको अपने मुंह में ये गुटिकाएं रख

लेनी चाहिए। सरस्वती पण्डिता की एक भी चाल नहीं चल सकेगी। वह तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगी। तुम्हारा कुशल-मंगल होगा और सरस्वती अपनी मौत मर जायेगी।''

''सूर्य देव अदृश्य हो गये। हमारी इस आराधना और वरदान की भनक किसी के कानों तक नहीं पड़ने पाई। हम अपने अध्ययन में लीन हो गईं। कुछ दिन बाद पण्डिता ने स्वतः हम से कहा—''पुत्रियो, मुझे अपने ज्ञान-बल से ऐसा ज्ञात हुआ है कि निकट भविष्य में ही तुम सब पर भारी विपत्ति आने वाली है। यदि तुम चाहो, तो मैं तुम्हारे उस संकट का निवारण कर सकती हूं।'' हम सभी कन्याओं ने कृत्रिम भय व्यक्त करते हुए कहा—''माताजी ! हमें आपके अतिरिक्त कष्ट से उबारने वाला और कौन हो सकता है ? हमारे अनिष्ट का शीघ्र ही निवारण करो।'' पण्डिता फूल कर कुप्पा हो गई। उसने कहा—''आज रविवार है। तुम सभी मध्याह्न में मेरे घर आना। अनिष्ट-निवारण के लिए मैं उस समय विशेष प्रयत्न करूंगी।''

''प्रत्येक व्यक्ति रहस्य में चलता है और वह किसी के समक्ष उसे खुलने भी नहीं देना चाहता। कुछ एक सौभाग्यशाली व्यक्तियों के हाथ यदि वह रहस्य लग

जाता है, तो वे अपना बचाव कर भी लेते हैं । पण्डिता अपनी योजनाओं का ताना-बाना बुन रही थी और हम आठों कन्याएं अपना । निर्दिष्ट समय पर हम आठों ही वहाँ पहुँची । पण्डिता ने आठ कुण्डल-वृत्त बनाये और हमें एक-एक में बिठा दिया । धूप-दीप, नैवेद्य, मंत्र आदि से पूजा की गई। पण्डिता मकान में गई। हमने अवसर का लाभ उठाया । मैंने चातुरी से कंचुकी पहन ली और मेरी सखियों ने मुंह में गुटिकाएं ले ली । कुछ ही समय बीता कि पण्डिता भी साड़ी पहनकर हमारे सामने आ गई । हम सब मिलकर उस पर टूट पड़ी । हमने उसकी साड़ी छीन ली । उसका जीवन-दीप उसी समय बुझ गया । जनता को जब इस घटना का पता लगा तो उन्होंने हमें बधाई देकर हमारे पौरुष को बढाया ।''

कंचुकी का पूरा वृत्तान्त सुनाकर राजहंसी पुनः रोने लगी । अम्बड़ ने उसे आश्वस्त किया और विश्वास दिलाया कि जब तक मैं हूं, तब तक कोई भी तेरी ओर टेढी नजर नही कर सकेगा । मैं प्रतिक्षण तेरे सहयोग मे हूं । अम्बड़ ने अपना असली रूप प्रकट किया । साक्षात् एक देवकुमार को अपनी आँखों के सामने देखकर राजहंसी आश्चर्यान्वित हुई । उसे यह

भरोसा हो गया कि यह पुरुष निश्चित ही असाधारण प्रतिभाशाली व बलशाली है। उसने मनसा ही उसका वरण कर लिया। प्रत्यक्षतः प्रस्ताव रखा तो अम्वड़ ने भी उसे नहीं ठुकराया। दोनों स्नेह-सूत्र में आवद्ध हो गये।

सुख में कभी-कभी अचानक आपत्ति के बादल भी मंडरा जाते हैं, जिनकी कोई कल्पना भी नहीं करता। दोनों सुखपूर्वक रह रहे थे। एक दिन किसी अनजाने वृक्ष का फल खा लेने से राजहंसी गर्दभी हो गई। गर्दभी की तरह रेंकती हुई वह अम्वड़ के पास आई। अम्वड़ ने अपनी पत्नी को जब इस प्रकार विरूप देखा तो उसका दिल पसीज गया। तत्काल वह उस वापी से पानी ले आया। गर्दभी को पिलाया तो पुनः वह अपने मूल रूप में आ गई। राजहंसी ने जल-महात्म्य के बारे में पूछा तो अम्वड़ ने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजहंसी ने भी रूप-परावर्तनकारी वृक्ष के फल अम्वड़ को दिखाये। अम्वड़ ने कुछ फल अपने पास रख लिये। अम्वड़ ने उस शाटिका के बारे में पूछा तो राजहंसी ने कहा—"वह तो मेरे पास नहीं है। वह तो मेरे पिता के नगर रोलगपुर में है। वह नगर यहां से बहुत दूर है। वहां सुरक्षित पहुंच पाना

भी अत्यन्त कठिन है।"

बुद्धिमान् व बलशाली व्यक्ति के लिए कुछ भी कठिन नहीं होता, अम्बड़ ने कहा और उसका स्वाभिमान चमक उठा। आकाश-पाताल में कही पहुंचना मेरे लिए असम्भव नही है। अम्बड़ ने आकाशगामिनी विद्या का स्मरण किया और राजहंसी को साथ लेकर चल पड़ा। कुछ ही देर मे अम्बड़ रोलगपुर के उद्यान में पहुंच गया। स्वयं वही ठहरा। राजहंसी राजमहलों में गई। अपहृत कन्या को विना किसी पूर्व-सूचना के राजमहलों में आते देखकर राजा-रानी को अतीव प्रसन्नता हुई। उन्होंने उससे अपहरण की सारी घटना पूछी। राजहंसी ने भी अपनी घटना सविस्तार वतलाई। साथ ही राजकुमारी ने यह भी बतलाया कि आपके दामाद तो उद्यान में वैठे आपकी अगवानी की प्रतीक्षा कर रहे है। राजा तत्काल उद्यान पहुंचा। अम्वड का विशेष सम्मान किया और उत्सवपूर्वक उसका नगर-प्रवेश कराया गया। राजहंसी का विवाह विधिवत् अम्बड़ के साथ किया गया। राजा ने अपना आधा राज्य भी अम्बड़ को दिया। राजहंसी की सातों कुलीन सखियों का पाणिग्रहण भी अम्बड़ के साथ हुआ। अपनी आठों पत्नियों के

साथ कुछ दिन अम्वड़ वहीं रहा।

स्वाभिमानी व्यक्ति अपने अपमान का बदला लेने से नहीं चूकता। कुछ समय वह खामोश रह सकता है, किन्तु, उसे भूल नहीं सकता। कुर्कुट के रूप में अम्वड़ ने जो अपमान व यातना सही थी, उसे वह तव तक नहीं भूल सकता, जब तक कि कमलकाञ्चन योगी की दाढ़ी को धूल न चटा देता। उसने रोलगपुर से अपने घर की ओर प्रस्थान किया। आठों पत्नियों व अन्य व्यक्तियों को स्थल-मार्ग से विदा किया और स्वयं आकाश-मार्ग से उसी वन की ओर चला। वहां से वापी का पानी व रूप परावर्तन-कारी फल लिया। हरिच्छत्र द्वीप पर पहुंचा। कमल-काञ्चन योगी का वेष वनाकर योगी के घर आया। कागी और नागी के हाथ में उसने फल दिया और कहा—"इसे संस्कारित कर शीघ्र ही शाक वनाओ। आज मुझे अभी भोजन करना है।" ज्यों ही वे दोनों शाक वनाने लगीं, अम्वड़ ने वह फल भी उसमें मिला दिया।

छल करने वाला व्यक्ति बहुत सावधान होता है। प्रत्येक क्रिया को वह जागरूकता से सम्पन्न करता है। अम्वड़ ने कागी योगिनी का रूप वनाया। योगी

के पास आया। वड़े स्नेह से उसने कहा—"भोजन तैयार है, शीघ्रता करें। शाक व भोजन वहुत ही स्वादिष्ट वना है। विलम्ब होने से सारा मजा ही किरकिरा हो जायेगा।" योगी भोजन के लिए अधीर हो उठा। शीघ्र ही वह घर आया। पीछे से आन्धारिका अकेली थी। अम्वड़ चुपके-से आया और उसे उठाकर चलता वना। आन्धारिका रोने लगी। अम्वड़ ने दो-चार तमाचे मार कर उसे शान्त कर दिया। निमेष-मात्र में ही वह अपनी सेना में पहुंच गया। आन्धारिका के संरक्षण का भार राजहंसी को सौंप-कर वह उन्हीं पैरों लौट आया। अम्वड़ अपने मूल रूप में ही योगी के घर आया। वहां उसने वहुत कौतूहल देखा। योगी गर्दभ हो गया था और दोनों योगिनियां गर्दभी। तीनों ही परस्पर दुलत्तियाँ चला रहे थे और तार-स्वर में रेंक रहे थे। उस कौतूहल को देखने के लिए आस-पास के अनेक लोग जमा हो गये थे। सभी तरह-तरह की बातें करते हुए उन पर व्यंग कस रहे थे। अम्वड़ ने सहसा कहा—"क्यों, कमलकाञ्चन और कागी-नागी! फिर कभी अम्वड़ को कुर्कुट वनाओगे?" उसने उनको पीटना आरम्भ किया। पीटते-पीटते वीच में कहा—"क्यों, कमलकाञ्चन, तेरी

आन्धारिका कहां गई ? मैंने ही उसे अपहृत किया है।"

वह बार-बार तीनों पर चढ़ता और उन्हे बुरी तरह पीटता। जनता योगी के कारनामों से परेशान हो चुकी थी। उसने कहा—इन्हें यह उचित ही पुरस्कार दिया गया है। जब विशेष यातना दी जा चुकी तो जनता की प्रार्थना से उसने उस वापी का पानी पिलाकर उन्हे पुनः मनुष्य बना दिया।

सफलता प्राप्त कर अम्बड़ अपने नगर की ओर चला। कुछ दिनों में वह अपने घर पहुंचा। गोरखयोगिनी के पास जाकर नमस्कार किया और आन्धारिका उन्हें समर्पित की। गोरखयोगिनी ने गौर से अम्बड़ की ओर देखा और कहा—"तूने यह तो बड़ा विषम कार्य किया। अन्य कोई इसे नही कर सकता। तू वास्तव में ही वीर है।"

अम्बड़ अपने घर चला आया। अपनी पत्नियों के साथ राज्य-सुख मे लीन हो गया।

❀ ❀ ❀

रत्नमाला

अम्वड़ कुछ दिनों के वाद पुनः गोरखयोगिनी के चरणों में उपस्थित हुआ। उसने प्रार्थना की—"माताजी ! कृपा कर तीसरा आदेश प्रदान करें !" योगिनी ने कहा—"सिंहल द्वीप में सोमचन्द्र राजा राज्य करता है। उसकी रानी का नाम चन्द्रावती और पुत्री का नाम चन्द्रयशा है। राजा के भण्डार में एक रत्नमाला है। तू उसे ले आ।"

अम्वड़ ने सिंहल द्वीप की ओर प्रस्थान किया। उसके साथ उसका पौरुप, सौभाग्य और प्रतिभा-वल ही था। कुछ ही दिनों में वह सिंहल द्वीप पहुँचा। फल-फूलों से लदे हुए एक उद्यान में उसने विश्राम लिया। राज-भवन में प्रवेश की वह नाना योजनाएं वना रहा था। सहसा उसकी दृष्टि एक नव यौवना युवती पर टिकी। युवती के मस्तक पर एक उद्यान लहलहा रहा था। अम्वड़ को इससे वहुत आश्चर्य हुआ। वह युवती उसके पास से गुजरी। अम्वड़ ने

सोचा, सम्भव है, चन्द्रयशा यही हो। उसने चन्द्रयशा के नाम से पुकारा और पूछा—"सुभगे ! कहाँ जा रही हो ?" युवती ने घूरकर अम्बड़ की ओर देखा और कहा—"ज्ञात होता है, तुम विदेशी हो। मैं चन्द्रयशा नहीं हूं। मैं तो उसकी सखी हूं। मेरा नाम राजलदेवी है। मेरे पिता यहां के प्रधान मंत्री है। उनका नाम है—वैरोचन।"

अदृष्टपूर्व जब कुछ भी देखा जाता है तो जिज्ञासा का उभरना सहज ही है। अम्बड़ ने युवती से पूछा—"सुभगे ! तेरे मस्तक पर यह उद्यान जैसा क्या दिखाई दे रहा है ? मैं इसका रहस्य जानना चाहता हूं।"

राजलदेवी ने उत्तर देना आरम्भ किया—"एक बार मैं राजकुमारी के साथ क्रीड़ा करने के लिए वन में गई। वहा हमने एक वृद्धा को देखा। हम दोनों ही उससे डर गईं। वह वृद्धा हमारे समीप आई। हमने अपना साहस बटोरा। वृद्धा ने हमसे पूछा—'तुम दोनो कहा जा रही हो ?' हमने कहा—'हम तो आपकी सेवा में ही आई है।' प्रसन्नमना उस वृद्धा ने कहा—'यदि तुम मेरे साथ चलो, तो मैं तुम्हे महादेव के दर्शन करा दू।' हमने उसकी बात का प्रतिरोध

करते हुए कहा—'माता ! महादेव कहां है और वहां हम कैसे पहुंच सकती हैं। यह तो बतलाओ ?' वृद्धा ने कहा—'महादेव पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर रहते हैं। मैं उनकी प्रतिहारिका हूं। मैं अपनी अचिन्त्य शक्ति से तुम्हें यथेष्ट स्थान पर पहुंचा सकती हूं।' रोगी तो चाहता ही था और वैद्य ने उसे वही अनुपान बतला दिया। हमने कहा—'तो हमें कैलाश पर्वत ले चलो।' वृद्धा तत्काल ही हमें पर्वत पर ले आई। शिव-पार्वती के साक्षात् दर्शन कर हम दोनों कृतार्थ हो गईं। किन्तु, हमें लगा कि हम कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हैं। हमने वृद्धा से पूछा—'यह इन्द्रजाल है या सत्य ?' वृद्धा ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—'तुम सन्देह मत करो।' हमने शिव को नमस्कार किया। शिव ने वृद्धा से हमारे बारे में पूछा। वृद्धा ने हमारा परिचय दिया और कहा—'ये आपके दर्शनों की उत्कण्ठा से आई हैं। आप इन्हें कृतार्थ करें।' शिव ने हमारे पर अनुग्रह किया। उन्होंने एक दिव्य रत्नमाला राजकुमारी के गले में डाल दी और मुझे कूर्मदण्ड दिया। दोनों ही वस्तुओं का प्रभाव बतलाते हुए उन्होंने कहा—'माला को धारण करने वाला यथेच्छ रूप बना सकता है और वह जहां भी जायेगा,

विजयी होगा। कूर्मदण्ड के प्रभाव से समस्त शत्रुओं का एवं रोगों का निवारण होगा।'

"हम उन वस्तुओं को पाकर भी फूली नहीं। हमने पुनः निवेदन किया—'आपने अनुग्रह कर हमें ये वस्तुएं प्रदान की, किन्तु, हम तो प्रतिदिन आपके दर्शन चाहती है; अतः कोई ऐसी वस्तु प्रदान करे, जिससे हमारा मनोरथ पूर्ण हो सके।' शिवजी हमारे इस निवेदन से विशेष प्रसन्न हुए। उन्होंने त्रिदण्ड नामक वृक्ष की ओर संकेत किया और कहा—'तुम इसे ले जाओ। यह तुम्हारी कामना पूर्ण करेगा।' हमने श्रद्धा से शिवजी का अभिवादन किया। वृद्धा हमें पुनः मृर्त्य-लोक में यहाँ छोड गई। अब हम प्रतिदिन उस वृक्ष पर बैठकर शिवजी के दर्शन करने जाती है और पुनः आकर वृक्ष को आँगन में आरोपित कर देती है।"

अम्बड़ की एक जिज्ञासा का तो समाधान हो भी नहीं पाया था कि बीच में जब यह सुना तो वह बहुत चकित हुआ। उसने अपनी जिज्ञासा पुनः प्रस्तुत की। राजलदेवी ने कहा—"कैलाश की ओर जाते हुए सूर्य हमें प्रतिदिन देखा करता था। एक बार हम कैलाश से लौट रही थीं। सूर्य ने सोचा, ये कौन है और कहां जाती है? मनुष्य का भक्षण कर कहीं मुझे निगलने को

तो नहीं आ रही हैं ? किन्तु, ज्यों ही हम उसके निकट पहुंचीं, उसके भ्रम का निवारण हो गया । मनुष्य-रूप में उसने हमें देखकर प्रतिदिन गमनागम के बारे में पूछा । हमने उसे सारा वृत्तान्त बताया । शिव के प्रति हमारी वास्तविक भक्ति को देखकर सूर्य हमारे ऊपर विशेष प्रसन्न हुआ । उसने हमें वर माँगने के लिए कहा । हमने सजगता से उत्तर दिया—'हम तो केवल शिव की भक्ति ही चाहती हैं । अन्य वर से हमें कोई प्रयोजन नहीं है।' सूर्य हमारे ऊपर विशेष प्रसन्न था । उसने राजकुमारी को अपने भण्डार से एक सुन्दर तिलकाभरण दिया और मुझे यह रसमय उद्यान प्रदान किया । तिलकाभरण का ऐसा प्रभाव है कि उससे अंधकार में भी उद्योत हो जाता है । हम प्रतिदिन शिव-पूजा करती हैं और आनन्द में समय व्यतीत करती हैं ।"

उद्यमी बातों में उलझकर अपना लक्ष्य कभी नहीं भूलता । अम्बड़ का प्रयत्न रत्नमाला पाने के लिए था । वह राजलदेवी के साथ शहर में प्रविष्ट हुआ । अम्बड़ ने एक नट का रूप बनाया और राजमार्ग पर ही नाटक आरम्भ कर दिया । मृदंग पर थाप लगते ही उसकी मधुर ताल से आकर्षित होकर हजारों व्यक्ति वहाँ एकत्र हो गए । सभी दर्शक उसकी कला की मुक्त

कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। नाटक का आरम्भ उसने अकेले ही किया था, किन्तु, नाटक में ज्यों-ज्यों रस बरसता गया, साथियों की भी आवश्यकता होती गई। उसने इकतीस नटिनियो को भी अपनी बहुरूपिणी विद्या से बना लिया। सारा रंगमंच खिल उठा। नाटक में विशेष आकर्षण भर गया। अपार जन-समूह उमड़ पडा। राजकुमारी चन्द्रयशा भी नाटक देखने के लिए आई। उसने जब अपनी सखी राजलदेवी को भी नृत्य में सम्मिलित देखा, तो उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने उसे टोकते हुए कहा—"अरी ! क्या तुझे पागलपन सवार हो गया है ? कुलीन बालाओं के लिए नृत्य-गान मे इस प्रकार सम्मिलित होना शोभा नही देता।"

राजलदेवी ने निर्भयतापूर्वक उत्तर दिया—"नाद विद्या तो पाचवां वेद है। सुखी व्यक्तियों का सुखवर्धक है और दु:खी व्यक्तियों के लिए भी सदा सुखदायक है। यह ऐसा कौनसा अकुलीन कार्य है ? मेरा तो तुझे भी कहना है, तू भी हमारे साथ आ जा और जीवन का अपूर्व आनन्द लूट।"

चन्द्रयशा चुप हो गई। राजलदेवी के माता-पिता भी वहा उपस्थित थे। उन्होने जब राजलदेवी का यह उत्तर सुना तो वे खीज से भर गए। वे राजा के पास

आये। उन्होंने निवेदन किया—"स्वामिन्! निश्चित ही यह धूर्त है और उसने राजलदेवी को भ्रमित कर दिया है। क्या करना चाहिए?" राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। नाटक देखने के लिए वह भी वहाँ आया।

संगीत, कविता और नृत्य में तब और अधिक रस बरसने लगता है, जब दर्शक व श्रोता उन पर झूम उठते हैं। तीनों ही दर्शकों व श्रोताओं पर न्योछावर हो जाते हैं। अम्बड़ की जब चारों ओर से मुक्त प्रशंसा हो रही थी और राजा भी दर्शकों में उपस्थित था, तो उसने नाटक को और सरस कर दिया। उसने ब्रह्मा, विष्णु व महेश का रूप बनाया। दर्शक अनुमान न कर सके कि ये कृत्रिम हैं या वास्तविक। उसके हाव-भाव, नृत्य-गीत व स्वर-ताल आदि सभी मोहक थे। चारों ओर गहरी शान्ति थी। कुछ देर बाद अचानक नाटक समाप्त हुआ। सभी को लगा, जैसे स्वप्न देख रहे थे। राजा ने प्रसन्न होकर अम्बड़ को रत्न, स्वर्ण, आभूषण आदि देने चाहे, किन्तु, उसने कुछ भी स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। अम्बड़ की प्रशस्ति में इससे चार-चाँद लग गए। उस दिन जन-जन के मुख पर एक ही चर्चा थी।

राजलदेवी जब अपने माता-पिता से मिली तो उन्होंने उसे कड़ा उलाहना दिया। उन्होंने कहा—"एक कुलीन कन्या का इस प्रकार किसी धूर्त के साथ खेलना लज्जाजनक है। तू ने अपनी कुल-प्रतिष्ठा पर कालिख पोतने का प्रयत्न किया है।" राजलदेवी ने बात काटते हुए कहा—"मेरे लिए वह धूर्त नहीं है। मैंने तो उसको अपना जीवन भी अर्पित कर दिया है।" माता-पिता आग-बबूला होकर उस पर बरस पड़े। राजलदेवी मौन हो गई।

सायंकाल दोनों सखियाँ मिलीं। चन्द्रयशा ने राजलदेवी से प्रश्न किया—"जिसके साथ तू नाटक खेल रही थी, वह कौन है? चातुरी से तो ज्ञात होता है कि वह निश्चित ही कोई सधा हुआ कलाकार है। उसके बारे में यदि तुझे कुछ जानकारी हो तो मैं सुनना चाहती हूं।" राजलदेवी ने अम्बड़ का जीवन-वृत्त विस्तार से बतलाया और अपने आकर्षित होने की

आई ।

चतुर व्यक्ति किसी के समक्ष अपना गुप्त रहस्य नहीं खोलता । कार्य की सम्पन्नता पर ही वह किसी को अपना भेद देता है । राजलदेवी ने चन्द्रयशा के साथ हुए अपने वार्तालाप से अम्बड़ को सूचित किया और चन्द्रयशा के पास जाने के लिए उसने आग्रह भी किया । अम्बड़ ने उसे स्वीकार कर लिया । राजलदेवी ने चन्द्रयशा के महलों की पहचान उसे करा दी । ज्यों ही रात का दूसरा पहर कुछ बीता, अम्बड़ राजकुमारी के महल में पहुंच गया । राजकुमारी ने अम्बड़ का बहुत स्वागत किया । बहुत समय तक दोनों का स्नेहिल वार्तालाप होता रहा । जाते समय अम्बड़ ने राजकुमारी को पान का एक बीड़ा दिया । उसमें उस फल का चूर्ण भी था । राजकुमारी ने प्रेम का उपहार समझकर उसे अपने मुंह में दबा लिया । अम्बड़ अपने आवास की ओर चला आया तथा राजकुमारी पान खाकर लेट गई ।

सुखद कल्पना भी कभी-कभी अभिशाप में बदल जाती है, मनुष्य को सहसा यह विश्वास नहीं होता । किन्तु, परिणाम देखकर वह कलप उठता है । राजकुमारी के महलों में प्रातःकाल दासियाँ आईं । उन्होंने

अम्बड चन्द्रयशा को पान का बीडा दे रहा है।

गर्दभी के रूप में चक्कर लगाते हुए उसे देखा, तो सभी को आश्चर्य व दुःख हुआ। राजा को सारी वस्तुस्थिति निवेदित की गई। राजा को भी अपार दुःख हुआ। शहर के सैकड़ों संभ्रान्त नागरिक भी वहाँ एकत्र हो गए। बहुत सारे सिद्धहस्त वैद्यों को भी बुलाया गया। अनेक उपचार किए गए, किन्तु, सभी निष्फल प्रमाणित हुए। खिन्नमना राजा ने उद्घोषणा करवाई—"जो मेरी पुत्री को नीरोग करेगा, उसे एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं पारितोषिक के रूप में दी जायेंगी।" अनेकानेक मंत्र-तंत्रवादी उस घोषणा से आकृष्ट होकर आए, नाना प्रतिकार किए, किन्तु, राजकुमारी तनिक भी स्वस्थ न हो पाई। राजा ने पुनः घोषणा करवाई—"जो मेरी पुत्री को स्वस्थ कर देगा, पारितोषिक के रूप में उसे आधा राज्य और वह कन्या दी जायेगी।"

अम्बड़ ने योगी का वेष बनाकर उस घोषणा का स्पर्श किया। तत्काल राजपुरुषों ने राजा को बधाई दी। राजा अम्बड़ को राजकुमारी के महल में ले गया। योगीराज अम्बड़ ने तीन दिन तक देवाराधन किया। चौथे दिन अम्बड़ ने जनता व राजा की उपस्थिति में राजकुमारी को पूर्ण रूप से स्वस्थ कर दिया। सभी व्यक्ति दाँतों तले अंगुली दबाने लगे। सभी एक

स्वर से कह रहे थे—निश्चित ही यह योगी असाधारण पुरुष है। राजा ने अपनी घोषणा के अनुसार अम्बड़ को आधा राज्य दिया और कन्या का विवाह भी उसके साथ किया। वैरोचन प्रधान मन्त्री ने अपनी कन्या राजलदेवी अम्बड़ को अर्पित की। अम्बड़ वहाँ कुछ दिन ठहरा। अपनी दोनों पत्नियों व राज्य-भार का अधिग्रहण कर अपने नगर की ओर चल पड़ा। अम्बड़ रत्नमाला भी नहीं भूल पाया था। उसने उसे भी ले लिया। रथनूपुर पहुंचकर गोरखयोगिनी के चरणों में रत्नमाला भेंट की औरसारा वृत्तान्त सुनाया। योगिनी ने उसे आशीर्वाद प्रदान किया। अम्बड़ अपने घर लौट आया और सुखपूर्वक रहने लगा।

❀ ❀ ❀

लक्ष्मी और बन्दरिया

गोरखयोगिनी एक दिन प्रसन्नमना थी। अम्बड़ उसके चरणों में उपस्थित हुआ। करबद्ध होकर उसने निवेदन किया—"माता! अनुग्रह करो और चौथा आदेश प्रदान करो। योगिनी ने कहा—"तुम नवलक्ष नगर जाओ। वहाँ एक बहुत बड़ा बोहित्थ (समुद्री व्यापारी) रहता है। उसके घर में लक्ष्मी है। उसके पास एक बन्दरिया भी है। तू उसकी लक्ष्मी और बन्दरिया को ले आ।"

अम्बड़ वहाँ से चल दिया। मार्ग में उसने सुगंध-वन देखा। वन अत्यन्त रमणीक था। बारहों मास ही वहाँ बसन्त रहता था। कुछ ही क्षणों में अम्बड़ का सारा पथ-श्रम दूर हो गया। वह चारों तरफ दृष्टि पसारकर वन की सुषमा को देख रहा था। बकुल वृक्ष के झुरमुट में से उसने एक अत्यन्त सुरूपा बाला को जाते हुए देखा। बाला ने अम्बड़ का हृदय चुरा लिया। वह उसके पीछे-पीछे हो लिया,

किन्तु, वह बाला बिजली की तरह समीपवर्ती एक सरोवर के बीच से होती हुई शीघ्रता से कहीं चली गई और अदृश्य हो गई। अम्बड पलकें बिछाता ही रह गया। उसने उसे चारों ओर खोजा, किन्तु, कहीं भी उसका पता न चल सका। विरहाकुल अम्बड़ की आँखें झरने लगीं। दुःख में ही उसके दिन बीतने लगे।

भाग्यशाली की कामनाएं कभी अधूरी नहीं रहा करतीं। समय पाकर वे पूर्ण होती ही हैं। अम्बड एक दिन उसी बकुल वृक्ष के नीचे बैठा था। एक वटुक ने आकर उसे प्रणाम किया। एक फल भेंट करते हुए उसने निवेदन किया—"महाभाग! तुम मेरे साथ चलो। तुमको अमरावती ने अपने आवास पर आमंत्रित किया है।" एक अपरिचित व्यक्ति के माध्यम से अपरिचित युवती का निमंत्रण अवश्य ही रहस्य-भरा हो सकता है। अम्बड ने उस निमंत्रण को स्वीकार करने से पूर्व आगंतुक वटुक से अमरावती और फल के बारे में जिज्ञासा की।

वटुक ने कहना आरम्भ किया—"अग्निकुण्डपुर में देवादित्य राजा राज्य करता था। उसकी पटरानी का नाम लीलावती था। उसके और भी बहुत सारी रानियाँ थीं। राजकुमारों की संख्या भी बहुत थी।

एक दिन क एरानी ने राजा को अपने महल मे भोजन के लिए आमंत्रित किया। राजा ने उस दिन का भोजन उसी रानी के महल मे किया। रानी के विचार कुत्सित थे। भोजनान्तर रानी ने राजा पर जादू-टोना कर दिया। राजा तोते के रूप मे बदल गया। कुछ ही क्षणो मे वह सवाद विद्युद्गति से सारे शहर मे फैल गया। जनता मे हाहाकार मच गया। एक लोक-प्रिय राजा को इस प्रकार विना किसी अपराध के तोता बना देना, घिनौना कार्य था। सभी ने रानी की तीव्र भर्त्सना की। अन्य रानियो व पुत्रो ने मिल कर उस रानी को तिरस्कारपूर्वक देश से निकाल दिया। नृप के दुख से सारा ही शहर दुखित हो गया। पटरानी लीलावती ने तोते की परिचर्या का दायित्व अपने पर ले लिया।

तोते की परिचर्या मे कोई कमी नही थी, पर, उस शरीर मे राजा को चैन कैसे मिल सकता था! एक दिन उसने लीलावती के समक्ष चिता मे जलकर भस्म होने की इच्छा व्यक्त की। सारे ही पारिवारिको व नागरिको मे उससे कोहराम मच गया। उसी समय आकाश-मार्ग से तपस्वी कुलचन्द्र जा रहे थे। उन्होने उस स्थिति को देखा। जनता को आश्वस्त करते हुए

जगी। उसने अपनी बहिन के लिए पानी से लहलहाता एक सरोवर बनाया। सरोवर के मध्य मूल्यवान रत्नों से परिपूर्ण एक आवास बनाया। तपस्वी राजा ने अमरावती के भावी वर के बारे में पूछा तो धनद ने अपने अवधिज्ञान का प्रयोग करते हुए कहा—"महा कलाकार अम्वड़ इसका पति होगा।"

तपस्वी ने पुनः पूछा—"उसे हम कैसे जान सकेंगे?"

धनद ने कहा—"आज से सातवें दिन बकुल वृक्षों के झुरमुट से गुजरती हुई अमरावती उसे अपने-आप देख लेगी।"

सारा रहस्य जब खुल चुका तो अम्वड़ ने मन-ही-मन अपने भाग्य की प्रशंसा की। जिस कन्या के लिए वह अकुला रहा था, उस कन्या की ओर से ही स्वतः उसको निमंत्रण प्राप्त हो गया। आगन्तुक बटुक ने आग्रहपूर्वक अम्बड को अपने साथ लिया और दोनों अमरावती के आवास की ओर चले आए। अमरावती ...मन से खडी हुई। उसने अम्बड़ का विशेष सम्मान ...या। परस्पर अनेक बातें हुई। दोनों ने ही एक-...का हृदय प्रत्यक्षतः जीता। अम्वड़ ने राजर्षि से ...की इच्छा व्यक्त की। अमरावती ने बटुक को ...जाने लगा, अम्वड़ भी

को जन्म दिया। रानी की उसी समय मृत्यु हो गई। राजा ने ही वन-भैंसों का दूध पिलाकर उस कन्या का पालन किया। वह कन्या ही अमरावती है।

अवस्था के साथ-साथ शरीर व प्रतिभा का विकास भी सहज है। इससे बाह्य व आन्तरिक; दोनों ही सौन्दर्य निखर उठते हैं। अमरावती का लावण्य इन्द्राणी से भी प्रतिस्पर्धा करने लगा। एक दिन वह वन में निश्चिन्त बैठी थी। आकाश-मार्ग से धनद जा रहा था। अमरावती के लावण्य पर वह अतिशय मुग्ध हुआ। वह भूमि पर उतर आया। अमरावती से विवाह की प्रार्थना करते हुए उसने उसके समक्ष तीन रत्न रखे। तीनों ही रत्न चामत्कारिक हैं। एक रत्न के प्रभाव से जल का उपद्रव शान्त हो जाता है, दूसरे के प्रभाव से अग्नि का उपद्रव और तीसरे के प्रभाव से भूत-प्रेत आदि की व्याधि का उपशमन होता है। अमरावती ने धनद को अपने स्नेह के लिए बधाई दी और चातुरी से कहा—"आज से आप मेरे बन्धु हैं। भाई-बहिन के स्नेह के सम्मुख सभी स्नेह हल्के पड़ते हैं। आपने मुझे ये तीन रत्न तो दिये ही हैं, किन्तु, ऐसा भी कुछ दें, जिससे मेरा कोई भी पराभव न कर सके।" अमरावती के प्रतिवेदन से धनद के हृदय में भी बन्धुत्व भावना

जगी। उसने अपनी बहिन के लिए पानी से लहलहाता एक सरोवर बनाया। सरोवर के मध्य मूल्यवान रत्नों से परिपूर्ण एक आवास बनाया। तपस्वी राजा ने अमरावती के भावी वर के बारे में पूछा तो धनद ने अपने अवधिज्ञान का प्रयोग करते हुए कहा—"महा कलाकार अम्बड़ इसका पति होगा।"

तपस्वी ने पुनः पूछा—"उसे हम कैसे जान सकेंगे?"

धनद ने कहा—"आज से सातवें दिन बकुल वृक्षों के झुरमुट से गुजरती हुई अमरावती उसे अपने-आप देख लेगी।"

सारा रहस्य जब खुल चुका तो अम्बड़ ने मन-ही-मन अपने भाग्य की प्रशंसा की। जिस कन्या के लिए वह अकुला रहा था, उस कन्या की ओर से ही स्वतः उसको निमंत्रण प्राप्त हो गया। आगन्तुक बटुक ने आग्रहपूर्वक अम्बड़ को अपने साथ लिया और दोनों अमरावती के आवास की ओर चले आए। अमरावती आसन से खड़ी हुई। उसने अम्बड़ का विशेष सम्मान किया। परस्पर अनेक बातें हुई। दोनों ने ही एक-दूसरे का हृदय प्रत्यक्षतः जीता। अम्बड़ ने राजर्षि से मिलने की इच्छा व्यक्त की। अमरावती ने बटुक को संकेत किया। वह उठकर ज्यों ही जाने लगा, अम्बड़ भी

उसके साथ हो गया। अमरावती ने उसे रोका, किन्तु, वह नहीं माना। अमरावती ने वे तीनों रत्न भी उसे देने चाहे, किन्तु, उसने उन्हें नहीं लिया। वह ऐसे ही चल पड़ा। आगे-आगे बटुक चल रहा था और पीछे-पीछे अम्बड़। वे दोनों कुछ ही दूर जा पाये होंगे कि अम्बड़ को एक मछली निगल गई। मछली कुछ ही दूर चली होगी कि वह बगुले की चोंच में जा फँसी। बगुला उड़ रहा था कि एक गृध्र ने उसे अपना ग्रास बना लिया और वह आकाश में अदृश्य हो गया। बटुक ने पीछे घूमकर देखा तो अम्बड़ दिखाई नहीं दिया। बटुक ने सरोवर में उसकी बहुत खोज की, किन्तु, उसका कहीं भी पता न चल सका।

दिल पर पत्थर बाँधकर बटुक अमरावती के पास आया। उसने कन्या से सारी वस्तुस्थिति बतलाई। कन्या मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। राजर्षि पिता ने शीतल उपचारों से उसे सचेत किया और सान्त्वना दी, किन्तु, अमरावती का शोक दूर न हो सका। उसकी आंखों में तो अम्बड़ ही तैर रहा था। कुछ समय बीता।

गृध्र पक्षी उड़ता हुआ एक वृक्ष पर जा बैठा। वह भार से आक्रांत हो रहा था। उसी मार्ग से जाते हुए एक व्याध ने उस गृध्र को देखा। उसने वाण छोड़ा।

कहा—"आप निर्देश करें।" अम्वड़ ने कहा—"इसी नगर में वोहित्थ की एक रूपिणी नामक कन्या है। मैं उससे मिलना चाहता हूँ। तुम मुझे उसके घर पहुँचा दो।" उन चारों ने उस कार्य को स्वीकार किया। अम्वड़ ने उन्हे मुक्त कर दिया। अम्वड़ को साथ लेकर वे वोहित्थ के घर आई।

रूपिणी का महल जल की खाई से वेष्टित था। चारों ओर ताम्र का प्राकार था और वह सात मंजिल में था। पाँच हजार सुभट उसके प्रतिहारिक थे। सैंकड़ों ध्वजाएँ व पताकाएँ उस पर फहरा रही थी। रत्नमय द्वीपों से महल उद्योतित हो रहा था। रूपिणी एक सुनहले कक्ष में लक्ष्मी के पास बैठी वन्दरिया के साथ क्रीड़ा कर रही थी। पाँचों ही वहाँ पहुँच गए। रूपिणी ने आँखों का संकेत कर चारों का स्वागत किया। साथ ही उसने सरोष प्रश्न भी किया—"यह अदृष्टपूर्व अज तुम कहाँ से ले आई? यह कौन है? इसके बारे में विस्तृत प्रकाश डालो।"

एक सखी ने उत्तर दिया—"निश्चित ही यह अज नया है, किन्तु, यह हमारे द्वारा लाया गया है, यह मिथ्या आरोप हमारे पर क्यों मढ रही हो? यह तो तुम्हारे बारे में [illegible] था। तुम्हारे-लिए ही

ने 'हाँ' कहकर अपनी सहमति व्यक्त की ।

व्याध-पुत्री के सुझाव पर चारों ही अजा बन गईं। अम्वड़ ने भी अपना स्वरूप छोड़ दिया और अज बन कर उनके पीछे-पीछे चलने लगा। एक नये बकरे को अपने पीछे आते देखकर वे चारों ही भयभीत हुईं। आगे जाने का उन्होंने संकल्प छोड़ दिया और वे अपने-अपने घर लौट आईं। प्रातःकाल चारों मिलीं। चारों के मस्तिष्क में एक ही प्रश्न था, वह अज कौन था और वह हमारे पीछे कहाँ से हुआ ? जब तक इस रहस्य को नहीं जान लिया जाता, तब तक हम निरापद नहीं हैं। दूसरी रात में वे फिर उसी प्रकार अपने-अपने घर से आईं। अजा के रूप में चलने लगीं। अज-रूप में अम्वड़ भी उन्हें वहीं मिला। अम्वड़ ने उनको स्तम्भित कर दिया। एक कदम भी चल पाना उनके लिए कठिन हो गया। वे असमंजस में डूब गयीं। साहसपूर्वक उन्होंने अज से ही कहा—"देव ! आप कौन हैं और हमें आपने किसलिए स्तंभित किया है ? व्यर्थ ही हमारी विडम्बना क्यों करते हो ? हमें जो भी कहना चाहते हो, कहो। हम आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं ?"

अज ने कहा—"यदि तुम मेरा एक काम कर सको, तो मैं तुम्हें सहर्ष छोड़ दूँगा।" चारों ही ने

कहा—"आप निर्देश करें।" अम्वड़ ने कहा—"इसी नगर में बोहित्थ की एक रूपिणी नामक कन्या है। मैं उससे मिलना चाहता हूं। तुम मुझे उसके घर पहुँचा दो।" उन चारों ने उस कार्य को स्वीकार किया। अम्वड़ ने उन्हें मुक्त कर दिया। अम्वड़ को साथ लेकर वे बोहित्थ के घर आईं।

रूपिणी का महल जल की खाई से वेष्टित था। चारों ओर ताम्र का प्राकार था और वह सात मंजिल में था। पाँच हजार सुभट उसके प्रतिहारिक थे। सैकड़ों ध्वजाएँ व पताकाएँ उस पर फहरा रही थीं। रत्नमय द्वीपों से महल उद्योतित हो रहा था। रूपिणी एक सुनहले कक्ष में लक्ष्मी के पास बैठी बन्दरिया के साथ क्रीड़ा कर रही थी। पाँचो ही वहाँ पहुँच गए। रूपिणी ने आँखों का संकेत कर चारों का स्वागत किया। साथ ही उसने सरोष प्रश्न भी किया—"यह अदृष्टपूर्व अज तुम कहाँ से ले आई? यह कौन है? इसके बारे में विस्तृत प्रकाश डालो।"

एक सखी ने उत्तर दिया—"निश्चित ही यह अज नया है, किन्तु, यह हमारे द्वारा लाया गया है, यह मिथ्या आरोप हमारे पर क्यों मढ रही हो? यह तो तुम्हारे बारे मे सब कुछ जानता था। तुम्हारे लिए ही

इसने मार्ग में हमारी विडम्बना की। इसके बारे में जो कुछ भी तुम जानना चाहती हो, इसी से ही क्यों नहीं पूछ लेती ?"

रूपिणी एक बार डर गई। फिर उसने कुछ साहस किया और अज से कहा—"तुम अपना असली रूप प्रकट करो। मैं जानने को विशेष उत्सुक हूँ।" अम्बड़ ने अज-रूप का त्याग कर दिया और दिव्य मनुष्य के रूप में प्रकट हुआ। देखते ही सब की आँखें चुँधिया गईं। रूपिणी का हृदय तो जैसे कि उसकी ओर ही खिंचा जा रहा था। उसने प्रश्न किया—"स्वामिन ! आप कौन हैं ?" अम्बड़ ने कहा—"मेरा नाम अम्बड़ है। गोरख योगिनी के प्रताप से मुझे अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। सारा संसार मेरी मुट्ठी में है। मैं जैसे नचाना चाहूँ, सबको नाचना होगा।" रूपिणी चमत्कृत हुई और उसने अपना समर्पण करते हुए कहा—"मैं आज से आपके अधीन हूँ। मेरा वही उपयोग होगा, जो आप चाहेंगे।"

अम्बड़ अपने आलोचित कार्य में पूर्ण सफल था। जो वह चाहता था, उसकी प्राप्ति का मार्ग निष्कंटक हो गया। अम्बड़ ने कहा—"मुझे यह लक्ष्मी और बन्दरिया दे ?"

कहा—"आप निर्देश करें।" अम्बड़ ने कहा—"इस नगर में बोहित्थ की एक रूपिणी नामक कन्या है। उससे मिलना चाहता हूँ। तुम मुझे उसके घर पहुँचा दो।" उन चारो ने उस कार्य को स्वीकार किया अम्बड़ ने उन्हें मुक्त कर दिया। अम्बड़ को साथ लेकर वे बोहित्थ के घर आईं।

रूपिणी का महल जल की खाई से वेष्टित था। चारों ओर ताम्र का प्राकार था और वह सात मंजिल में था। पाँच हजार सुभट उसके प्रतिहारिक थे। सैकड़ों ध्वजाएँ व पताकाएँ उस पर फहरा रही थीं। रत्नमय दीपों से महल उद्योतित हो रहा था। रूपिणी एक सुनहले कक्ष में लक्ष्मी के पास बैठी बन्दरिया के साथ क्रीड़ा कर रही थी। पाँचों ही वहाँ पहुँच गए। रूपिणी ने आँखों का संकेत कर चारों का स्वागत किया। साथ ही उसने सरोष प्रश्न भी किया—"यह अदृष्टपूर्व अज तुम कहाँ से ले आई ? यह कौन है ? इसके बारे में विस्तृत प्रकाश डालो।"

एक सखी ने उत्तर दिया—"निश्चित ही यह अज नया है, किन्तु, यह हमारे द्वारा लाया गया है, यह मिथ्या आरोप हमारे पर क्यो मढ़ रही हो ? यह तो तुम्हारे बारे में सब कुछ जानता था। तुम्हारे लिए ही

रूपिणी चमत्कृत होकर अम्बड के सम्मुख समर्पण करते हुए

रूपिणी ने विनयावनत कहा—"जब मैं ही आपकी हो चुकी हूँ, तो मेरी सारी वस्तुएं भी आपकी ही हो चुकी है। किन्तु, मुझे यह बन्दरिया कैसे प्राप्त हुई और इसके साथ मेरे प्राण-तन्तु किस प्रकार जुड़े हुए है, यह भी मै आपको निवेदन करना चाहती हूँ।" अम्बड जम कर बैठ गया और रूपिणी ने कहना आरम्भ किया—"एक बार मैने इन्द्र की आराधना की। उसने प्रसन्न होकर मुझे यह बन्दरिया दी। उसने कहा—'जब तक यह तेरे पास रहेगी, तेरा सौभाग्य बढेगा। कोई भी तेरा पराभव नही कर सकेगा। किन्तु, जिस दिन तेरे से इसका वियोग होगा, उस दिन तेरी मृत्यु अवश्यम्भाविनी है।' इसलिए हे सिद्ध पुरुष ! इसका और मेरा साथ-साथ रहना अनिवार्य-सा हो गया है। यह बन्दरिया मुझे प्रतिदिन नये-नये रत्न प्रदान करती है, जिनका मूल्य दो लाख का होता है। पहले आप मेरे साथ विवाह करे और मुझे व बन्दरिया को अपने साथ ले।"

अम्बड़ शीघ्रता में था, अत. उसने कहा—"अपने माता-पिता से कहो, वे तैयारी में लगें।" रूपिणी ने बात को काटते हुए कहा—"ऐसे कार्य शीघ्रता मे नही बन पाते। यदि मै यह प्रस्ताव माता-पिता के समक्ष

प्रस्तुत करूँगी, तो वे इसे कैसे मानेंगे ? प्रपंच के बिना यह कार्य सफल नहीं होगा।" अम्वड़ ने कहा—"वह भी बतलाओ। मैं शीघ्र ही उसे कर सकूँगा।" रूपिणी ने कहा—"पहले अज-विद्या प्राप्त करें। नगर में जाकर राजा मलयचन्द्र की पुत्री वीरमती के साथ विवाह करें और उसके बाद मुझे अनुगृहीत करें।"

अज-विद्या प्राप्त कर अम्वड़ शहर में आया। राजा मलयचन्द्र घोड़े पर सवार होकर घूमने जा रहा था। अम्वड़ ने अपनी विद्या का स्मरण किया। राजा बकरा हो गया। नागरिकों ने जब राजा को बकरे के रूप में देखा, तो बहुत दुःखित हुए। राजपुरोहित और मंत्री ने अनेक उपचार किए, किन्तु, सफलता नहीं मिली। प्रधान मंत्री ने स्थिति को नियंत्रण में रखने के अभिप्राय से नगर-द्वार बंद करवा दिए।

अम्वड़ अवसर की ताक में ही था। उसने बहुरूपिणी विद्या के माध्यम से चतुरंगिनी सेना को विकुर्वणा की। अम्वड़ ने अपने सुभटों को प्रशिक्षित कर नगर-द्वार पर भेजा। द्वार बंद थे। सुभटों ने द्वारपालों से कहा—"प्रतोली को बंद क्यों कर रखा है ? रथनूपुर के राजा नगर-अवलोकन के लिए आए हैं।" प्रधान मंत्री से अनुमति लेकर द्वार खोल दिए गए। सैन्य-

सहित अम्बड ने नगर मे प्रवेश किया। प्रधान मंत्री ने आगे आकर उनका स्वागत किया। नगर में चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। अम्बड ने पूछा—"यह क्यो ?" प्रधान मत्री ने सारी घटना सुनाई। अम्बड़ ने कहा—"यह तो चुटकी मात्र मे ही हो सकता है। राजा को तो मै स्वस्थ कर सकता हू, किन्तु, इसमे मुझे क्या मिलेगा ?" प्रधान मंत्री ने कहा—"यदि राजा स्वस्थ हो जाता है, तो आधा राज्य और वीरमती कन्या आपको भेट की जायेगी।" अम्वड ने विद्या का स्मरण किया और उसके प्रभाव से राजा सकट से मुक्त हो गया। प्रधान ने राजा मलयचन्द्र को सारी घटना बतलाई। राजा ने प्रसन्न होकर अपना आधा राज्य व वीरमती कन्या अम्बड को प्रदान की।

एक कार्य की सिद्धि से अन्य कार्य भी स्वत सिद्ध हो जाते हैं। वीरमती को लेकर जब अम्बड आया, तो रूपिणी आदि पाँचो सखियो ने भी उसके साथ विवाह किया। लक्ष्मी और बन्दरिया को प्राप्त किया। अम्वड धन-वैभव व पत्नियो को लेकर सुगध वन मे आया। अमरावती वहाँ कलप रही थी। अम्वड़ भी वहाँ रोने लगा। उद्यानपाल बटुक ने उसे रोते हुए देखा तो राजर्षि के साथ वहाँ आया। वटुक ने अम्वड़ को

रविचन्द्र दीपक

अम्बड़ गोरख योगिनी के सात आदेशों को पूर्ण करने की धुन मे था। कुछ दिन वाद वह पुन योगिनी के पास आया। पाँचवे आदेश के लिए उसने प्रार्थना की, तो योगिनी ने कहा—"सौराष्ट्र मे देवपत्तन नगर है। वहाँ के राजा का नाम देवचन्द्र है। वैरोचन उसका प्रधान मत्री है। वैरोचन के घर एक विशेष दीपक है। उसी का नाम रविचन्द्र है। तू उसे ले आ।"

अम्वड़ धुन का पक्का था। योगिनी को नमस्कार कर वह देवपत्तन की ओर चल पडा। मार्ग मे उसे एक ब्राह्मण मिला। अम्बड़ ने उससे पूछा—"तुम कहाँ जा रहे हो और कहाॅ से आ रहे हो ?" ब्राह्मण ने अपनी राम-कथा आरम्भ की। मै देवपत्तन से आ रहा हूँ। उत्तर दिशा मे महादुर्ग पर्वत है। उसके पास ही सिहपुर नगरी है। वहाँ सागरचन्द्र राजा राज्य करता है। उसके पुत्र का नाम समरसिह और पुत्री का नाम रोहिणी है। राजा सागरचन्द्र पर-काय-प्रवेशिनी विद्या

जानता है। वृद्ध अवस्था में राजा ने राजकुमार को राज्य-भार सौंप दिया और स्वयं निवृत्त होकर वन में जाने लगा। राजकुमारी रोहिणी ने भी पिता से कुछ देने का आग्रह किया। राजा ने उसे पर-काय-प्रवेशिनी विद्या प्रदान की और सावधान किया—"यह विद्या तू चाहे जिसे नहीं दे सकेगी। अपने भाई के अतिरिक्त अन्य मनुष्य का मुँह भी नहीं देख सकेगी। जिसे यह विद्या देगी, उसी के साथ विवाह करना तेरे लिए अनिवार्य होगा।" राजा वन में जाकर साधना मे लीन हो गया और कुछ समय बाद वह देह-मुक्त भी हो गया।

ब्राह्मण ने आगे कहा—"समरसिंह यहां राज्य करता है। रोहिणी पिता की शय्या का रक्षण करती हुई कभी पर्वतों पर, कभी गुफाओं में और कभी महलों में समय व्यतीत कर रही है।"

अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए ब्राह्मण ने कहा—"मैं उस कन्या से पर-काय-प्रवेशिनी विद्या लेने के लिए जा रहा हूँ।"

अम्बड़ की प्रतिभा बड़ी सूक्ष्म थी। किसी के दिल की बात वह बड़ी सहजता से निकलवा लेता था। उसने कहा—"विद्या की प्राप्ति तो विद्या से ही होती है। तुम उस राजकुमारी से विद्या लोगे, तो परिवर्तन

में उसे अपनी कौनसी विद्या दोगे ?"

ब्राह्मण ने कहा—"मेरे पास मोहिनी विद्या है। यह मैं उसे दूँगा और उसकी विद्या लूँगा।"

अम्बड़ ने पुनः प्रश्न किया—"कन्या को बिना देखे ही तुम विद्या कैसे ले सकोगे ?"

ब्राह्मण ने कहा—"इसके लिए तो कोई जाल बिछाना होगा।"

अम्बड़ ब्राह्मण से मोहिनी विद्या लेना चाहता था; अतः उसने कहा—"मेरे पास भी एक विद्या है। उसके आधार पर व्यक्ति अक्षय लक्ष्मी प्राप्त कर सकता है।"

ब्राह्मण के मुँह में पानी भर आया। उसने कहा—"कितना सुन्दर हो, यदि हम अपनी विद्या का आदान-प्रदान कर लें।"

अम्बड़ का इच्छित फलित हो गया। दोनों ने विद्याओं का परिवर्तन कर लिया। दोनों ही कुछ दिन बाद सिंहपुर के निकट पहुँच गये। ब्राह्मण का साथ अम्बड़ को अपनी अभिसिद्धि में विघ्न रूप लगा। नगर-उद्यान में दोनों ने विश्राम किया। अम्बड़ ने ब्राह्मण से कहा—"हम दोनों का नगर में साथ-साथ प्रवेश उपयुक्त नहीं रहेगा। अलग-अलग जाना दोनों के लिए ही हितकर होगा।" ब्राह्मण ने इसे स्वीकार कर लिया।

शहर में पहुँचते ही अम्बड़ ने तपस्विनी का रूप बनाया। एक चौराहे पर अपना आसन जमाया। मोहिनी विद्या से सभी नागरिकों को आकृष्ट कर लिया। शहर में यह विश्रुत हो गया कि तपस्विनी सब प्रकार के निमित्त जानती है। किसी व्यक्ति की कार्य-सिद्धि कब और किस प्रकार होगी, निमेष मात्र में ही वह बतला देती है। यह बात उस ब्राह्मण के कानों तक भी पहुँची। वह भी तपस्विनी के पास आया। विनयावनत होकर उसने पूछा—"भगवति ! मैंने जो कार्य सोच रखा है, वह होगा या नहीं ?"

तपस्विनी ने ब्राह्मण के भाग्य का निर्णय देते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा—"तू एक नई विद्या सीखने के लिए यहाँ आया है, किन्तु, वह विद्या तुझे प्राप्त न हो सकेगी। तेरा प्रयत्न बेकार ही जायेगा।"

ब्राह्मण को बड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु, उसने अपने प्रयत्न शिथिल नहीं किये। सफलता केवल प्रयत्न के ही अधीन नहीं होती। कभी-कभी वह देवाधीन भी हो जाती है। ब्राह्मण के सारे ही प्रयत्न जब विफल हो गये, तो वह अपने देश की ओर चला गया।

तपस्विनी की निमित्त-ज्ञान-सम्बन्धी चर्चा को राजकुमारी रोहिणी ने भी सुना। उसने दासियों को भेज-

कर अपने महलों में आने के लिए उसे निमंत्रण दिया। तपस्विनी ने उसे स्वीकार कर लिया। वह रोहिणी के पास आई। सुरूपा व सुलक्षणा तपस्विनी को देखकर रोहिणी बहुत प्रभावित हुई। उसे स्वर्ण-सिंहासन पर विठाकर राजकुमारी ने कुशल-प्रश्न पूछे। भोजन के लिये निमंत्रण दिया, तो उसने अपनी अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा—"भोजन हमारे लिए आनन्दकारक नहीं है। हमारे जीवन का अभिप्रेत तो तपस्या ही है। तप के विना धर्म का अनुष्ठान असम्भव होता है। हमारा तो यही ध्येय है कि हमारा पल-पल तपस्या में ही बीते।"

राजकुमारी रोहिणी तपस्विनी के धर्मोपदेश से बहुत प्रभावित हुई। उसने एक प्रश्न किया—"उभरते यौवन में ही आप विरक्त कैसे हो गईं?" तपस्विनी ने उसे टालने का प्रयत्न किया, किन्तु, राजकुमारी का अत्यन्त आग्रह था; अतः वह उसे नहीं टाल सकी। तपस्विनी ने कहा—"सुरीपुर में मेरे पिता राजा सूरसेन राज्य करते थे। मेरा नाम माणिकी था। बचपन में ही माता का दुःखद-वियोग मुझे सहना पड़ा। पिता की छत्र-छाया में ही मैं पली-पुसी। मेरा अध्ययन पाठशाला में आरम्भ हुआ। विपत्ति पर विपत्ति आया

ही करती है। एक दिन जब कि मैं पाठशाला में अध्ययन निरत थी, विद्याधर मणिभद्र की दृष्टि मेरे पर पड़ी। वह मेरा अपहरण कर मुझे वैताढ्य पर्वत पर ले गया। उसने मुझे गौरी और प्रज्ञप्ति विद्या सिखाई। जब मे यौवन में आ गई, उसने मेरे साथ विवाह करना चाहा। मणिभद्र के पुत्र का नाम सुभद्रवेग था। वह भी मेरे पर मोहित था। उसने भी मेरे साथ विवाह करना चाहा। पिता-पुत्र में संघर्ष हो गया। पुत्र ने पिता को मौत के घाट पहुँचा दिया। सुभ द्रवेग ज्योंही निष्कण्टक हुआ, किरणवेग ने उसे भी मार गिराया। दो-दो प्राणियों की हत्या से मेरा कलेजा कांप उठा। मुझे अपने लावण्य पर घृणा हुई। मैं वहां से आंख बचा-कर आत्म-घात के लिए निकल पड़ी। जंगल में जाकर एक वट वृक्ष पर चढ़ी। सामने एक विशाल वापी थी। छलांग भरने को ज्यों ही मै उद्यत हुई, पीछे से आकर किसी ने मुझे पकड़ लिया। मैंने मुड़कर देखा, पकड़ने वाला और कोई नहीं, किरणवेग ही था। वह मुझे अपने घर ले आया। मैं उसके साथ रहने लगी। एक दिन मैंने उसे अन्य स्त्री में आसक्त देखा। मैंने उसे बहुत रोका, किन्तु, वह नही माना। मेरे वैराग्य का यही निमित्त था। आंख चुराकर मैं भाग निकली और

तपस्विनी राजकुमारी रोहिणी को अपना जीवन-वृत्त सुनाते हुए

तब से गगा-तट पर तापसी-वृत्ति स्वीकार कर रह रही हूँ। इन दिनों तीर्थ-यात्रा करती हुई मैं यहाँ आई हूँ।''

तपस्विनी ने अपनी बात आगे बढ़ाई। उसने भी राजकुमारी से आपबीती बताने के लिये कहा। परस्पर जब हृदय मिल जाते हैं, तब प्रच्छन्न रहस्य भी प्रकट होते समय नहीं लगता। राजकुमारी ने विस्तार से अपनी घटना बतलाई। साथ ही उसने कहा—''मेरी *यह प्रतिज्ञा आज पूर्ण हो गई है। आप जैसा सुयोग्य* पात्र भी जब मुझे मिल गया है, मैं अपनी विद्या आपको भेंट करूंगी। तपस्विनी ने उदासीनता दिखलाई। राजकुमारी ने आग्रहवश पर-काय-प्रवेशिनी विद्या उपहृत की।

निमित्त-वेत्ता व ज्योतिषी के समक्ष व्यक्ति अपने हृदय को खोलते हुए नही सकुचाता। जिस प्रसग पर चर्चा करते हुए आत्मीय जनो से भी सकोच होता है, वह प्रसग वहा सहज ही खुल पडता है। राजकुमारी ने तपस्विनी से कहा—''आपने जब नगर के सहस्रों व्यक्तियो के भाग्य का उद्घाटन किया है, तो मेरे भाग्य का भी तो कुछ उल्लेख करें। मेरा एक ही प्रश्न है, मेरे कौमार्य के अब कितने दिन और अवशिष्ट है ?''

तपस्विनी ने आंखें मूंद कर ध्यान का ढोंग रचा। कुछ क्षण बाद नेत्र खोले। बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा—"राजकुमारी ! तेरा भविष्य तो बहुत समुज्ज्वल है। कुछ दिनों में ही तेरा भावी पति यहां पहुँचने वाला है। वह वीर, साहसी व उदार है। ऐसे पुरुष तो किसी भाग्यवती को ही प्राप्त होते हैं।"

राजकुमारी की उत्सुकता और बढ़ गई। मुस्कराते हुए उसने कहा—"माताजी ! उसे मैं कैसे पहचान सकूँगी ?"

तपस्विनी ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"तेरे उद्यान-पाल के हाथ वह पुरुष पुष्प-कंचुकी भेजेगा। इसी लक्षण से तुम पहचान लेना।"

कुछ क्षण रुककर तपस्विनी ने पुनः कहा—"अब मैं अपने आश्रम की ओर लौटना चाहती हूँ। गृहस्थों के साथ अधिक निवास हमारी साधना में बाधक होता है।"

इच्छित कार्य सफल होने के बाद प्रत्येक व्यक्ति अपने मूलरूप में ही आ जाता है। अम्बड़ ने तपस्विनी का वेष छोड़ दिया। अपना दिव्य रूप बनाया और देवपत्तन पहुँच गया। उद्यान-पाल के घर ठहरा। मोहिनी विद्या के प्रयोग से उसने सारे ही परिवार को अपनी मुट्ठी में कर लिया। उद्यान-पाल की पुत्री देमनी

अम्बड के दिव्य रूप से विशेष प्रभावित हुई। उसने अपनी माता के समक्ष अम्बड के साथ विवाह करने की योजना रखी। मा को वह प्रस्ताव बहुत उपयुक्त लगा। माता ने वह प्रस्ताव अम्बड के समक्ष रखा। अम्बड ने उसे स्वीकार कर लिया।

उद्यान-पाल के परिवार के साथ अम्बड की घनिष्ठ आत्मीयता हो गई। प्रतिदिन खुलकर बातें होती। एक दिन मालिन ने कहा—"कोई चमत्कार दिखाओ, जिससे राजा, प्रधानमन्त्री आदि सभी नागरिक चकित हो जायें।" अम्बड ने सब कुछ अवसर पर करने का आश्वासन दिया। मालिन दूसरे ही दिन फूलो के हार लेकर राज-सभा में जा रही थी। अम्बड ने उन्हे अपने हाथ मे लिया, मन्त्रों से अभिमन्त्रित किया और उनमे कुछ चूर्ण डाल दिया। मालिन से बोला—"एक हार राजा को दे देना और एक प्रधान मन्त्री को। किन्तु, और किसी को न देना।" मालिन ने राज-सभा मे जाकर वैसा ही किया और घर लौट आई। अम्बड ने एक दूसरा उपक्रम भी किया। नगर-द्वार, राज-महल-द्वार व प्रधान मन्त्री के गृह-द्वार पर अभिमन्त्रित चूर्ण डाल दिया। मन्त्र के प्रभाव से सभी द्वार कापने लगे। नागरिको ने जब यह देखा, सभी भयभीत हुए।

सभी का अनुमान था, कोई भूत-प्रेत आदि कुपित हो गया है। त्रसित होकर सभी अपने-अपने घरों में जाकर छुप गये। बहुत सारे अनुभवी व्यक्तियों का अनुमान था या तो यह नगर नष्ट हो जायेगा या पृथ्वी में समा जायेगा। यह विपत्ति बहुत बड़ी है। कुछ व्यक्तियों ने इस दैवी संकट से बचने के लिए किसी विशेष उपक्रम के लिए राजा से प्रार्थना की। राजा कुछ उत्तर देना चाहता ही था कि इसी समय वह प्रधान मंत्री के साथ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा।

आपत्ति पर जब आपत्ति आती है, तो हर एक व्यक्ति व्याकुल हो जाता है। सभी नागरिक अत्यन्त चिन्तित हुए। वैद्यों को बुलाकर अनेक उपचार किये गये, किन्तु, कोई भी सफलता नहीं मिली। व्याधि बढ़ती ही गई। दूसरे दिन राजा और प्रधान मन्त्री शृगाल की तरह चिल्लाने लगे। तीसरे दिन वे दोनों नंगे होकर नाचने लगे और अनर्गल प्रलाप करने लगे। चौथे दिन वे कीचड़, धूल व राख में लोटने लगे और उन पदार्थों को जनता पर भी फेंकने लगे। पाँचवें दिन प्रधान मंत्री मृदंग बजाने लगा और राजा नाचने लगा। छठे दिन दोनों गलबाँह डाल कर व बूम पाड़-कर रोने लगे। जनता समझ नहीं पाई, यह क्या हो

रहा है ?

अम्वड ने अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते हुए सातवें दिन मालिन से पूछा—"नगर में सर्वत्र व्याकुलता कैसे दिखाई दे रही है ?" मालिन ने मुस्कराते हुए कहा—"यह माया आपकी ही तो है। अपने चमत्कार-प्रदर्शन को आप अव संवृत्त करें। आपकी कला का सभी लोहा मानने लगेंगे।" अम्बड़ ने सभी द्वारों को तत्काल निश्चल कर दिया। जनता में विश्रुति हो गई, निश्चित ही यह कोई सिद्धपुरुष है। सहस्रों व्यक्तियों ने करबद्ध होकर नगर व राजा की रक्षा की प्रार्थना की। अम्बड़ ने कहा—"मुझे यदि पूरा पारिश्रमिक दिया जाये, तो सब समुचित कर सकता हूँ। यह सब तो मेरे बायें हाथ का खेल है।" जनता ने कहा—आप जो भी चाहेंगे, आपको भेंट किया जायेगा। अम्बड़ ने कहा—"मैं पहले ही बता देना उचित समझता हूँ। आधा राज्य, राज-कन्या के साथ विवाह और प्रधान मन्त्री के घर का रविचन्द्र दीपक मेरी दक्षिणा होगी।"

नागरिक एक बार असमंजस मे पड़े। अम्बड़ ने उनकी गहराई को मापते हुए कहा—"आपको पता नहीं है, ऐसी विद्याओं की सिद्धि में हमें कितना परि-

श्रम उठाना पड़ता है। प्राणों को हथेली पर रख कर हम चलते हैं। आपको यदि राज्य, राजकुमारी और दीपक इतने प्रिय हैं, तो रहने दीजिये। मुझे क्या लेना-देना है? राजा, प्रधान मन्त्री और नगर की रक्षा आप स्वयं करें। मैं तो एक विदेशी हूँ। घूमता-फिरता यहाँ आया हूँ। मैंने जब सुना कि सारा नगर ही संकट-ग्रस्त है, तो आपके उद्धार के लिए चला आया। आप यदि संकट-मुक्त होना ही नहीं चाहते, तो मैं क्या कर सकता हूँ?''

अम्बड़ ज्यों ही चलने को उद्यत हुआ, नागरिकों ने उसे घेर लिया। वे न उगल सके और न निगल सके। उन्होंने अम्बड़ का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। अम्बड़ ने कुछ समय ध्यान-जप आदि का अनुष्ठान किया। राजा और प्रधान मन्त्री स्वस्थ हो गये। जनता ने उस खुशी में महोत्सव किया। अम्बड़ की कला जन-जन में चर्चा का मुख्य विषय बन गई। सभी ने अम्बड़ का विशेष आभार माना। नागरिकों ने राजा को सारी घटना सुनाई। राजा भी बहुत हर्षित हुआ। उसने बिना किसी संकोच के राजकुमारी मदिरावती का विवाह अम्बड़ के साथ कर दिया। अपना आधा राज्य भी उसे दिया। वैरोचन मन्त्री ने

पास नहीं थी, अतः दो बाते न कर सकी। तुम भी बताओ, दुःख होना स्वाभाविक है कि नही?" अम्बड़ ने कहा—"यदि पुत्र के साथ तुम्हारी बातचीत हो जाये, तो चिता-प्रवेश के संकल्प को छोड़ सकती हो?" युवती ने उसे स्वीकार किया।

प्रत्येक विद्या का जब बार-बार उपयोग किया जाता है, तो उसमे वृद्धि ही होती है और प्रत्येक कार्य मे सफलता भी मिलती है। युवती ने पुत्र को एक जगह स्थापित कर दिया। अम्बड ने पर-काय-प्रवेशिनी विद्या का स्मरण किया। उसने पुत्र के शरीर मे प्रवेश किया और माँ के साथ बातचीत की। पुत्र ने माँ को सान्त्वना देते हुए कहा—"माँ! तू क्यों रो रही है? मेरी मृत्यु तो मेरे कर्मों से हुई है। तू समाधि से रह! मेरे लिए शोक न कर।" पुत्र की पुनः मृत्यु हो गई।

वनमालिका अम्बड को अपने घर ले आई। भोजन आदि से उसका विशेष सम्मान किया। अम्बड को अधिकृत जानकारी मिल गई कि वह फूल आदि लेकर राज-महलो तक प्रतिदिन जाती है। शहर मे भी यह बात विश्रुत हो गई कि यहाँ कोई सिद्ध-पुरुष आया हुआ है, जिसने वनमालिका के मृत पुत्र को भी जिला दिया था। यह उदन्त राजकुमारी रोहिणी ने

भी सुना। वनमालिका जब फूल लेकर राजकुमारी के पास आई, तो उसने उससे सारा वृत्तान्त सुना। वनमालिका ने अम्वड की बहुत प्रशसा की। रोहिणी उससे बहुत प्रभावित हुई। वनमालिका जब जाने लगी, तो रोहिणी ने अम्वड को अपना प्रणाम कहलवाया। उसने आकर अम्वड से कह दिया।

अम्वड का इच्छित अब पूरा होने ही वाला था। उसने दूसरे दिन फूलो की एक कंचुकी बनाई और वनमालिका के हाथ रोहिणी को उपहार मे भेजी। तपस्विनी का कथन रोहिणी की स्मृति पर उभर आया। वह पुलकित हो उठी। उसने मन-ही-मन सोचा, मेरा अब भाग्य निखर उठेगा। उसने अपने भाई से सारी घटना कही। भाई ने विशेष महोत्सव से अम्वड के साथ अपनी बहिन का विवाह कर दिया।

अभूतपूर्व सफलता के साथ अम्बड ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया। राज्य-वैभव, नव परिणीता पत्नियाँ और रविचन्द्र दीपक, उसके साथ थे। नगर पहुँच कर सबसे पहले वह गोरख योगिनी के पास गया। प्रणतिपात के साथ उसने रविचन्द्र दीपक योगिनी के समक्ष रखा। सारा वृत्तान्त सुनाया। योगिनी ने प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दिया और उसकी प्रशसा की। अम्वड अपने घर लौट आया।

❀ ❀ ❀

सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड

पाँच आदेशो मे जब अम्बड सब तरह से सफल हो गया, तो उसका साहस शतगुणित हो गया। सफलता पौरुष मे बल भरती है। शेष दो आदेशो को प्राप्त करने और उन्हे शीघ्र ही पूर्ण करने के लिए अम्बड़ बहुत उत्सुक था। कुछ दिन बाद वह पुन. गोरख योगिनी के चरणो मे उपस्थित हुआ। योगिनी ने आदेश दिया—"सौवीर देश मे सिन्धु नामक पर्वत है। कोडिन्न नामक नगर मे देवचन्द्र राजा राज्य करता है। इसी शहर मे वेद और वेदागो का अधिकारी विद्वान श्रीसोमेश्वर ब्राह्मण भी रहता है। उसके पास सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड है। उसे ले आ।"

अम्बड़ ने तत्काल ही उस दिशा मे प्रस्थान किया। मार्ग में एक नदी थी। केले के पत्तो से छाई हुई एक कुटिया उसमें तैर रही थी। अम्बड़ ने इसे गौर से देखा। कुटिया के पीछे उसे एक योगी दिखाई दिया। कुटिया मे एक सुकुमाला मृगी थी, जो सूर्य-किरणों से

भी सुना। वनमालिका जब फूल लेकर राजकुमारी के पास आई, तो उसने उससे सारा वृत्तान्त सुना। वनमालिका ने अम्बड की बहुत प्रशसा की। रोहिणी उससे बहुल प्रभावित हुई। वनमालिका जब जाने लगी, तो रोहिणी ने अम्बड को अपना प्रणाम कहलवाया। उसने आकर अम्बड से कह दिया।

अम्बड का इच्छित अब पूरा होने ही वाला था। उसने दूसरे दिन फूलो की एक कचुकी बनाई और वनमालिका के हाथ रोहिणी को उपहार में भेजी। तपस्विनी का कथन रोहिणी की स्मृति पर उभर आया। वह पुलकित हो उठी। उसने मन-ही-मन सोचा, मेरा अब भाग्य निखर उठेगा। उसने अपने भाई से सारी घटना कही। भाई ने विशेष महोत्सव से अम्बड के साथ अपनी बहिन का विवाह कर दिया।

अभूतपूर्व सफलता के साथ अम्बड ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया। राज्य-वैभव, नव परिणीता पत्नियाँ और रविचन्द्र दीपक, उसके साथ थे। नगर पहुँच कर सबसे पहले वह गोरख योगिनी के पास गया। प्रणतिपात के साथ उसने रविचन्द्र दीपक योगिनी के समक्ष रखा। सारा वृत्तान्त सुनाया। योगिनी ने प्रसन्नतापूवक आशीर्वाद दिया और उसकी प्रशसा की। अम्बड अपने घर लौट आया।

❀ ❀ ❀

सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड

पाँच आदेशों में जब अम्वड़ सब तरह से सफल हो गया, तो उसका साहस शतगुणित हो गया। सफलता पौरुष में बल भरती है। शेष दो आदेशों को प्राप्त करने और उन्हें शीघ्र ही पूर्ण करने के लिए अम्बड बहुत उत्सुक था। कुछ दिन बाद वह पुनः गोरख योगिनी के चरणों में उपस्थित हुआ। योगिनी ने आदेश दिया—"सौवीर देश में सिन्धु नामक पर्वत है। कोडिन्न नामक नगर में देवचन्द्र राजा राज्य करता है। इसी शहर में वेद और वेदांगों का अधिकारी विद्वान श्रीसोमेश्वर ब्राह्मण भी रहता है। उसके पास सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड है। उसे ले आ।"

अम्बड़ ने तत्काल ही उस दिशा में प्रस्थान किया। मार्ग में एक नदी थी। केले के पत्तों से छाई हुई एक कुटिया उसमें तैर रही थी। अम्बड़ ने इसे गौर से देखा। कुटिया के पीछे उसे एक योगी दिखाई दिया। कुटिया में एक सुकुमाला मृगी थी, जो सूर्य-किरणों से

भी प्रतिस्पर्धा कर रही थी। योगी उस पर पखों से हवा झल रहा था। यह एक असाधारण घटना थी। अम्बड के रोंगटे खडे हो गये। उसने प्रतिकारात्मक कदम उठाया। वहती हुई कुटिया को उसने स्तम्भित कर दिया। आकाश में उछला, अपना भयकर रूप वनाया और योगी पर झपटा। पाव पकड कर योगी को आकाश मे उछाल डाला। अम्बड और योगी मे डटकर सघर्ष हुआ। अम्बड विजयी हुआ। योगी मारा गया।

रहस्य के जब प्रतर खुलते है, तव उसमें से विशेष रहस्य का उद्घाटन होता है। अम्बड कुटिया को तट पर ले आया। कुटिया के अन्दर आया। एक-एक वस्तु को उसने ध्यान से देखा। मृगी सोने की जजीर से वधी हुई थी। वहीं स्वर्णमय पुरुष, दो रत्न कुण्डल व श्वेत-रक्त वर्ण वेंत की दो कठोर छडिया भी पड़ी थी। अम्बड उन वस्तुओं को इस रूप मे देख कर अत्यन्त चकित हुआ। वस्तुस्थिति की गहराई मे जाने के अभिप्राय से उसने लाल कठोर उठाई और उससे मृगी को पीटा। एक क्षण मे सारा वातावरण ही वदल गया। मृगी अत्यन्त सुरूपा युवती हो गई। अम्बड ने सारी घटना पर प्रकाश डालने के लिये युवती से अनु-

रोध किया ।

दु:खी व्यक्ति को जब कभी आत्मीयता प्राप्त होती है, तो उसका दु.ख आखो से छलक पडता है । गीली आँखो से उसने कहा—"बग देश मे भोजकटक नगर है । वैरसिह वहाँ का राजा है । मै उसी राजा की रत्नवती पुत्री हू । पिता की आज्ञा से एक दिन मै विलास कूप से पारद लाने के लिए चली । ज्यो ही अश्वारूढ हुई, घोडा मुझे उडा ले चला । वह विपरीत शिक्षा का था । मै उसकी इस प्रवृत्ति से अनभिज्ञ थी । मुझे वह एक घने जगल मे ले गया । वहाँ मुझे एक योगी मिला । वह मेरे सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया । तब से ही उसने मेरे पर अनेक उपक्रम किये । मेरा यह मृगीरूप भी उसी का एक अग था ।

योगी एक दिन राज-सभा मे आया । मेरे पिताजी व अन्य सभासदो को चकित करने के अभिप्राय से उसने वहाँ एक सुपल्लवित केले का स्तम्भ प्रकट किया । पिताजी ने योगी का विशेष सम्मान किया । उपस्थित सभी व्यक्ति उसके चमत्कार से प्रभावित थे । राजा ने कोई विशेष चमत्कार दिखाने का भी अनुरोध किया । योगी ने कहा—यदि चमत्कार देखना चाहते हो, तो इस स्तम्भ को चीर डालो । राजा

ने अपनी तलवार से उसे चीर डाला । उस स्तम्भ के बीच से आभूषणो से अलकृत एक युवती तत्काल बाहर आई । मेरे पिताजी और उपस्थित सभी सभासद् उसके सौन्दय पर न्योछावर हो गये । पिताजी ने जानना चाहा, जो कुछ भी दीख रहा है, वह सत्य है या इन्द्रजाल ? योगी ने उत्तर दिया—"यह मेरे हाथो की सफाई नही है । यह तो वास्तविकता है । यह युवती मणिवेग विद्याधर की पुत्री है और इसका नाम रत्नमाला है । आपको अर्पित करने के अभिप्राय से ही मैं इसे यहा लाया हू ।" राजा को बहुत प्रसन्नता हुई।।

विना सोचे और बिना किसी प्रयत्न के यदि श्रेष्ठ वस्तु की उपलब्धि होती है, तो कौन ऐसा होगा, जो अपने भाग्य को न सराहता होगा । राजा की बाछें खिल उठी । योगी ने कहा—"यह युवती आपको तब प्राप्त होगी, जब आप मेरा एक काय करेंगे ।" राजा ने जिज्ञासा की, तो योगी ने कहा—"मैं एक विशेष साधना कर रहा हू । आगामी अष्टमी की सन्ध्या को उसकी समाप्ति होगी । उस दिन आपको रत्नवती के साथ श्रीपर्णा नदी के तट पर पधारना होगा और उत्तर साधक का दायित्व सभालना होगा ।" राजा ने

बिना कुछ सोचे ही उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। योगी अपने घर पर लौट आया।

अविचारित कार्य का परिणाम सुखद नही होता। राजा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के बारे में जब मन्त्री को ज्ञात हुआ, तो उसने विरोध किया। उसने कहा—"ऐसे योगी निर्दय और धूर्त होते हैं। राजकुमारी के साथ आपका वहाँ जाना कतई उचित नही है।" राजा ने उत्तर में कहा—"तेरा कहना ठीक है। उस समय मैं यह सोच नही पाया। किन्तु, अब मुकरना भी तो उचित नही है। जो भवितव्य है, वह होगा।"

राजा और मन्त्री का वार्तालाप चल ही रहा था कि योगी भी वहीं पहुँच गया। साथ चलने के लिए तथा राजा को सज्जित होने के लिए उसने कहा। राजा ने तैयारी आरम्भ की। योगी ने राजा को अकेले ही तैयारी में देखा, तो पूछ ही लिया—"राजकुमारी कहाँ है?" राजा ने उत्तर दिया—"उसका वहाँ क्या प्रयोजन है?" योगी ने सरोष कहा—"राजन्! अपने वचन से इस प्रकार मुकर जाना अच्छा नही है। यदि वचन-भग किया गया, तो निश्चित ही कुछ विघ्न उपस्थित होगा। राजकुमारी के बिना मेरी विद्या भी सिद्ध नही हो सकेगी।"

विवश होकर पिताजी ने मुझे भी साथ ले लिया। हम सब श्रीपर्णा नदी के तट पर पहुँचे। योगी ने माग में चलते हुए जगल से श्वेत और रक्त कठोर की दो छडियाँ भी ले ली। योगी हमें साथ लेकर एक गुफा में गया। वहाँ एक अग्नि-कुण्ड था, जो प्रज्वलित हो रहा था। वह वहाँ बैठ कर हवन करने लगा। वहाँ का वातावरण देखते ही ज्ञात हो गया कि आज जाल में फँस गये है, किन्तु, तब हो भी क्या सकता था? कुछ क्षण बाद योगी मुझे अपनी कुटिया मे ले गया। श्वेत कठोर को छडी से पीट कर उसने मुझे मृगी बना दिया और स्वर्ण-शृखला से वही बाँध दिया। योगी पुन अग्नि-कुण्ड के पास आया। पिताजी के हाथ मे उसने तीन गोलियां देते हुए कहा—"इनको अग्नि-कुण्ड में डालना है। साथ ही मुझे नमस्कार करते हुए यह कहना है, मेरे सान्निध्य से योगीराज की विद्या सिद्ध हो।" पिताजी ने सब-कुछ स्वीकार कर लिया। वे तो एक बन्दी की तरह थे। गोलियाँ डाल कर पिताजी ने ज्यो ही योगी को नमस्कार किया, योगी ने पिताजी को अग्नि-कुण्ड मे डाल दिया। देखते-ही-देखते पिताजी स्वर्ण-पुरुष के रूप में बदल गये और निश्चेष्ट हो गए। योगी का मनचाहा हो गया था। उसने

स्वर्ण-पुरुष आदि सारी सामग्री और मुझे भी साथ लेकर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। नदी मे तैरते हुए, जब हम यहाँ पहुँचे तो आपसे साक्षात्कार हुआ। योगी को मार कर आपने मेरा उद्धार किया, अत मैं आपकी वहुत-वहुत आभारी हूँ।

राजकुमारी ने आपबीती तो सारी कह डाली, किन्तु, कुण्डलों की कथा अवशेप रह गई थी। अम्बड ने उस ओर संकेत करते हुए कहा—"इनका इतिहास भी वतलाओ ?"

रत्नवती ने कहना आरम्भ किया—"जब हम मार्ग मे जा रहे थे, कुण्डलो के बारे मे मुझे योगी ने बताया था—एक वार मैने कालिका देवी की आराधना की। उसने प्रसन्न होकर ये दो कुण्डल दिये। एक कुण्डल को यदि आकाश में फैक दिया जाये, तो वर्ष-भर चन्द्रमा की तरह शीतल प्रकाश बरसता रहेगा। इसी प्रकार दूसरे कुण्डल को यदि आकाश में फैका जाये, तो दो वर्ष तक सूर्य के समान उज्ज्वल प्रकाश सर्वत्र व्याप्त रहेगा।

जब सारा रहस्य हस्तगत हो गया, तो अम्बड़ ने अपना मौलिक रूप प्रकट किया। राजकुमारी रत्नवती उसे देखते ही मोहित हो गई। अम्बड की असाधारण

विशेषताओ के प्रति तो वह नतकन्धर थी ही। उसने विवाह का प्रस्ताव रखा। अम्बड ने उसे स्वीकार कर लिया। दोनो का वही गन्धर्व विधि से विवाह हो गया।

रत्नवती को अपने पिता की याद आई। उसने अम्बड से कहा—"अब आपको मेरे पितृ-नगर पधारना चाहिए। मेरा भाई समरसिंह राज्य-भार का वहन कर रहा है। पिताजी और मेरे बारे मे उसे कुछ भी पता नहीं,है। शीघ्र ही यदि हम वहाँ पहुँच जाते है, तो वह राज्य की व्यवस्था भी सुचारु कर सकेगा और पिताजी के बारे मे भी कुछ प्रयत्न कर सकेगा।" अम्बड को रत्नवती का प्रस्ताव उचित लगा। आकाश-माग से वे दोनो भोज कटक की ओर चल पडे। बहुत शीघ्र ही सीमा के समीप पहुँच गये। नगर शत्रु-सेना से घिरा हुआ था। रत्नवती ने अपने भाई की सुरक्षा का निवेदन किया। अम्बड ने भयानक रूप बनाया। हाथ मे मुद्गर लेकर वह शत्रु-सेना पर टूट पडा। शत्रु-सेना के पाव खिसक गये। सभी सैनिक अपने प्राण बचाने के लिये जिस ओर अवकाश मिला, भाग छूटे।

नगर का उपद्रव शान्त हो गया, तो रत्नवती ने शहर में प्रवेश किया। भाई को सारी घटना वतलाई। समरसिंह ने अम्बड का हार्दिक स्वागत किया। विशेष

उत्सव के साथ वह उसे राजभवन मे ले आया। अम्वड़ ने सारा राज्य समरसिंह को प्रदान किया। समरसिंह अम्वड के उपकार मे दब गया। समरसिंह ने रत्नवती का विवाह आडम्बरपूर्वक अम्वड के साथ किया।

अम्वड़ को सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड की आवश्यकता थी। उसे प्राप्त करने के लिए ही वह घूम रहा था। एक वार पश्चिम रात मे रत्नवती को सोती हुई छोडकर वह आकाश-मार्ग से चला। कूर्मक्रोड नगर के समीप जा उतरा। उसे सोमेश्वर ब्राह्मण के घर का पता लगाना था। एक व्यक्ति मिला। उससे उसने सोमेश्वर का घर पूछा। सम्मुखीन व्यक्ति ने कहा—"इस शहर में इक्कीस सोमेश्वर ब्राह्मण हैं। तुम किसका घर पूछ रहे हो ?" अम्वड असमंजस मे पड गया। वह निराश होकर समीपवर्ती कामदेव यक्ष के मन्दिर मे आ गया। निराश बैठा सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगा। उसे पद-चाप सुनाई दी। वह जग तो रहा ही था। उस आहट से विशेष सावधान हो गया। उसने चारो ओर दृष्टि दौडाई। एक युवती ने मन्दिर मे प्रवेश किया। उसकी दृष्टि युवती के क्रिया-कलापो पर केन्द्रित हो गई। अम्वड़ विल्कुल प्रच्छन्न था। युवती ने मन्दिर को विजन समझा। वह एक पाषाण-पुतली के पास जाकर रुक

गई। पुतली गुस्से मे भरकर पृथ्वी पर गिरी। उसने साक्रोश उस युवती से पूछा—"चन्द्रकान्ते ! आज तूने यह विलम्ब कैसे किया ?"

आगन्तुक युवती ने उत्तर दिया— "मेरे पिता सोमेश्वर आज राजा के पास से विलम्ब से ही लौटे थे। उनके घर लौटे बिना मैं कैसे आ सकती थी ?"

दोनो साथ हो गई और कामदेव की प्रतिमा के सम्मुख नृत्य करने लगी। नृत्य, हास्य व गीत से मन्दिर का कोना-कोना खिलने लगा। अम्बड ने अपने को प्रकट किया। उसने हास्य के साथ पूछ ही लिया— "बालाओ ! तुम कौन हो ?" एक अपरिचित व्यक्ति की अचानक उपस्थिति से वे डर गई। फिर भी चन्द्रकान्ता ने साहस से काम लिया। कुछ भी उत्तर देने से पूव उसने उसी से पूछ लिया—"महाभाग। तुम कौन हो ? अपना परिचय तो दो।"

अम्वड बातो मे वडा चतुर था। उसने कहा— "मेरा नाम पचशीप है और मै पश्चिम देश का निवासी हूँ।"

चन्द्रकान्ता की, अम्बड के उत्तर से, कोई उत्सुकता नहीं बढी। उसने उदासीनता का भाव व्यक्त किया। कुछ क्षण रुक कर पुतली ने उससे कहा—"कितना

चन्द्रकान्ता व पुतली कामदेव के सामने नृत्य करते हुए।

सुन्दर हो, आज हम वासवदत्ता के घर चलें।"
चन्द्रकान्ता ने तत्काल उत्तर दिया—"वहाँ जाना तो सुन्दर ही रहेगा, किन्तु, हमारा सारथी कौन होगा ?"
पुतली के पास उसका भी उत्तर था। उसने तत्काल कहा—"इस काय मे यह पचशीष हमारा सहयोगी हो सकता है। चन्द्रकान्ता ने पचशीष के समक्ष सारथी बनने का प्रस्ताव रख दिया। पचशीष यह जानने को उत्सुक था कि वे कहाँ जाना चाहती है ? दोनो ने इस जिज्ञासा का समाधान दिया—पाताल लोक।

अम्बड कुछ भी करने से पूर्व अपने लाभ-अलाभ को विशेष तोलता था। उसने भी शत रख दी, सारथी बन सकता हूँ, किन्तु, जो मैं चाहूँ, वह विद्या मुझे पहले ही देनी होगी। दोनों ने ही उसे स्वीकार किया। पचशीष को साथ लेकर वे दोनो प्रासाद से बाहर आईं। बच्चो के खिलौने जैसा एक छोटा-सा रथ वहाँ खडा था। वे दोनो उस पर बैठ गईं और पचशीष से रथ हाँकने के लिए कहा। वह चकित इधर-उधर देखता रहा। बैलों का कही अता-पता भी नही था। उसने तत्काल कहा—"बिना बैलो के भी कभी रथ चला है ?" दोनों ही सखियाँ खिल-खिलाकर हँस पडी। उन्होने पचशीष के प्रति व्यग कसते हुए कहा—"बैल

होने पर तो बच्चे भी रथ को चला सकते है, फिर उसमे आपका क्या कौशल है ?" कुछ रुककर वे दोनों फिर बोली—"आप इसकी चिन्ता न करे । रथ पर सवार हो जाये । सब कुछ स्वत हो जायेगा ।" पचशीर्ष का स्वाभिमान चमक उठा । वह रथ पर बठ गया । चन्द्रकान्ता ने विद्या-बल से रथ को आकाश में उड़ाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु, वह उसमें सफल नहीं हुई । पचशीर्ष ने रथ पर सवार होते ही अपने विद्या-बल से उसे स्तम्भित कर दिया था । वे दोनों ही इससे अज्ञात थी। जब रथ नहीं उड़ा, तो वे एक-दूसरे की बगलें ताकने लगी । कुछ ही क्षण मे उन्हे आभास हो गया, यह उस सारथी की ही कलाबाजी ह । उनका अभिमान चूर-चूर हो गया । दीन-भाव से दोनों ही बोली—"आपने हमें यह दण्ड क्यों दिया ? हमने आपका कोई अपराध तो नहीं किया है ? हम आपका लोहा मानती है । आप हमें कष्ट-मुक्त करे ।"

पंचशीर्ष ने अवसर का लाभ उठाया । उसने कहा—"रथ तभी आगे बढ सकेगा, जब कि बिना वेग ही रथ चलाने की विद्या पहले मुझे सिखला देंगी ।" दोनों को ही वह प्रस्ताव मानना पड़ा । पंचशीर्ष को जब विद्या प्राप्त हो गई, रथ भी पवन वेग से आगे

बढ़ गया। दोनो ही वासवदत्ता के घर पहुँच गई। वासवदत्ता ने दोनों का हार्दिक स्वागत किया। उन्हें उच्च आसन पर विठलाया और फल पुष्प अर्पित किये। दोनो ने वे फल-पुष्प सारथी को प्रदान कर दिये। वासवदत्ता के लिए वह अपरिचित था। पूछने पर उन्होंने बताया—"यह हमारा नया सारथी है।"

तीनो सखियाँ परस्पर बाते कर रही थी। इसी शहर मे उनकी एक अन्य सखी रहती थी, जिसका नाम नागश्री था। उसने अपना सेवक भेजकर तीनो को अपने यहाँ के लिए निमन्त्रण दिया। वासवदत्ता ने आगन्तुक सखियो से पूछकर वह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वे सभी सारथी के साथ वहाँ आई। नागश्री ने उनका भूरिश स्वागत किया। चारो सखियाँ आमोद-प्रमोद में लीन थी। पचशीर्ष ने हाथ की सफाई दिखलाई। उसने पान के चार बीडे तैयार किये। फल-चूर्ण से भावित कर उसने चारो को दिये। खाते ही चारों मृगी हो गई। पाताल मे हाहाकार हो गया। पचशीर्ष मृगी-रूप मे चन्द्रकान्ता को लेकर शहर मे आया। उसने उसे वहाँ छोड दिया। वह सीधी अपने घर पहुँच गई। राजपुरोहित को जब यह ज्ञात हुआ, तो उसे बहुत दु ख हुआ। राजा भी इस घटना से

चिन्तित हुआ। वह राजपुरोहित के घर की ओर चला। राजा ने बिना बैल ही रथ चलाते हुए पंचशीर्ष को देखा। उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसे वह एक सिद्ध-पुरुष लगा। इसने उसे सम्बोधित करते हुए कहा—"क्या तुम कोई देव या विद्याधर हो, जो इस तरह बिना बैल ही रथ चला रहे हो?"

पंचशीर्ष ने अपनी बात को एक नया आकार दिया। उसने कहा—"मैं विद्याधर हूँ।" और अम्बड ने अपना दिव्य रूप प्रकट किया। जनता स्तब्ध नतमस्तक हो गई। राजा ने आगे बढ़कर व श्रद्धाभिभूत होकर निवेदन किया—"मेरे पुरोहित की कन्या दैव-वश मृगी हो गई है। मेरे पर अनुग्रह कर आप उसका उद्धार करें।" पंचशीर्ष ने तत्काल उत्तर दिया—'राजन्! हम लोग ऐसे सांसारिक कार्यों में नहीं उलझते। फिर भी आपका आग्रह है, तो इसे करूँगा।'

राजा पंचशीर्ष को साथ लेकर राज-पुरोहित के घर आया। मृगी-रूप में चन्द्रकान्ता उसके समक्ष प्रस्तुत की गई। पंचशीर्ष ने अच्छी तरह से देखा। कुछ समय चिन्तन का भी ढोंग रचा। उसने स्पष्ट शब्दों में कहा—"यह कार्य बहुत दुष्कर है। इसमें मुझे अपनी बहुत सारी शक्ति का व्यय करना होगा। आप मुझे

इसके पारिश्रमिक के तौर पर क्या देगे ?"

सकट मे फसा हुआ व्यक्ति सब कुछ देने को प्रस्तुत हो जाता है। राजा ने कहा—"जो चाहोगे, दिया जायेगा।" अम्बड ने कहा—"मैं तो विशेष कुछ नहीं चाहता। केवल एक वस्तु चाहता हूँ। और वह है, सोमेश्वर का सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड। राजा ने उसे स्वीकार किया। अम्बड ने लाल रग की कठोर से मृगी पर दो-चार प्रहार किये। मृगी पुन चन्द्रकान्ता हो गई। चारों ओर हर्ष छा गया। सोमेश्वर को जैसे नये प्राण मिल गए। उसने सर्वार्थसिद्धि दण्ड अम्बड को भेंट किया और अपनी कन्या चन्द्रकान्ता का विवाह भी उसी के साथ किया।

चन्द्रकान्ता कष्ट से मुक्त हो गई। उसे अपनी तीनो सखियो की याद आई। उसने उनको भी मुक्त करने के लिए अम्बड से प्रार्थना की। अम्बड पाताल पुरी पहुँचा और उसने वहाँ पुत्तलिका, नागश्री और वासवदत्ता को भी मुक्त किया।

अम्बड कुछ दिन पाताल पुरी रुका। वहाँ से कौडिन्न नगर लौट आया। राजा देवचन्द्र से अनुमति पाकर अपने नगर लौटा। भोजकटक नगर में प्राप्त वस्तुएँ भी उसने साथ ली। अत्यन्त उल्लास और

सफलता के साथ वह रथनूपुर आया। सबसे पहले उसने गोरख योगिनी से भेंट की। श्रद्धापूर्वक सर्वार्थ-सिद्धि दण्ड उसके चरणो मे उपस्थित किया। अम्बड की सफलता से योगिनी को भी बहुत प्रसन्नता हुई। उसने अम्बड़ को शतश साधुवाद दिया और उसके पौरुष की प्रशसा की। योगिनी के आशीर्वाद के साथ अम्बड अपने घर पहुँचा।

❀ ❀ ❀

मुकुट का वस्त्र

अम्बड ने कभी विफलता नही देखी। असाध्य काय भी निमेप मात्र मे उसके लिए सहज हो गये। योगिनी के आदेशो का प्रत्यक्ष फल उसने देख लिया था। योगिनी अब उसकी पूजनीया हो चुकी थी। उसके प्रत्येक आदेश मे अम्बड के जीवन का नया उन्मेप था, अत उन्हें पूरा करने मे वह तत्पर रहता था। कुछ दिन बीत गये, तो वह पुन गोरख योगिनी के चरणो मे उपस्थित हुआ। सातवाँ आदेश प्रदान करने के लिए उसने प्राथना की। योगिनी ने कहा—'दक्षिण दिशा मे सोपारक नगर है। वहाँ के राजा का नाम चण्डीश्वर है। उसके मु[illegible] ह। उसे ले आ।''

अम्बड ने उस उद्यान को जी भर कर देखा। एक वृक्ष के सरस व सुगन्धित फलो को देखकर उसके मुँह मे पानी भर आया। फल लेने के लिए वृक्ष की ओर उसने हाथ बढाया। वृक्ष की शाखा पर एक बन्दर बैठा था। उसने कहा—"पहले मेरा एक वाक्य सुनो। यदि उसे सुने बिना हाथ बढाया, तो तुम विरूप हो जाओगे।" अम्बड निश्चल हो गया। बन्दर ने कहना आरम्भ किया—"इसी वाटिका के दक्षिण भाग मे तुम्बगिरी पर्वत है। उस पर्वत पर आम का एक वृक्ष है। पहले तुम उसके फल ले आओ। बाद मे प्रसन्नतापूर्वक इस वृक्ष के फल-पत्ते लेना।"

अम्बड़ का मन विस्मय और विनोद से भर गया। उसके मस्तिष्क मे रह-रह कर एक ही प्रश्न टकरा रहा था, उस आम के वृक्ष की क्या विशेषता है ? इस वृक्ष और उस वृक्ष का भी परस्पर क्या कोई सम्बन्ध है ? यदि है तो क्या हो सकता है ? अम्बड़ के कदम उसी वृक्ष की ओर बढ गये। वृक्ष के समीप पहुँच कर ज्यो ही उसने फल तोडने का प्रयत्न किया, शाखाये आकाश की ओर खिसक गई। अम्बड़ ने जिस ओर भी हाथ डाला, उस ओर ऐसा ही हुआ। किन्तु, अम्बड़ ने अपना प्रयत्न नही छोडा। उसने एक छलाग भरी

और वह वृक्ष पर चढ बैठा। वृक्ष की जडे उखड गई और वह आकाश मे उडने लगा। अम्बड चकित हुआ, किन्तु, भीत नही हुआ। वह वृक्ष पर बैठा चारो ओर के अद्भुत दृश्य देखता रहा। वृक्ष भी उडता हुआ नन्दन वन मे पहुच गया। वृक्ष वहाँ रुका। अम्बड नीचे उतरा। इतनी दूर आ जाने पर भी आश्चयमय जगत् जैसे कि उसके पीछे ही दौड रहा है।

अनजाने प्रदेश मे पहुँच कर व्यक्ति सहसा चारों ओर नजर दौडाता ही है। अम्बड ने भी जब ऐसा ही किया, तो उसे एक जलता हुआ अग्नि-कुण्ड दिखाई दिया। चारो ओर नाना अलकारो से सुसज्जित युव तियो का गमनागमन हो रहा था। मृदग बज रहे थे। वीणा की मधुर स्वर-लहरी वातावरण को मुखर कर रही थी। चकित नेत्रो से अम्बड ने उस सारे दृश्य को देखा। एक दिव्य पुरुष, जो नाना अलकारो से सुसज्जित था, अम्बड के पास आकर खडा हो गया। मधुर हास्य के साथ पूछा—"वह बन्दर कैसा था?" वह आम का वृक्ष कैसा था?" बन्दर और आम्र वृक्ष का नाम सुनते ही अम्बड चौंका। उसको इसमे कोई रहस्य लगा। उसका उद्घाटन कराने के लिए उसने प्रश्न किया— "तुम कौन हो? वह ब दर कौन था?

यह अग्नि-कुण्ड क्यो है ? यह नाटक क्यो हो रहा है?'

आगन्तुक सज्जन ने कहा--पाताल लोक में लक्ष्मी-पुर नगर है। वहाँ के राजा का नाम हस है। मै वही हस हूँ। मैने ही बन्दर और आम्र-वृक्ष का रूप बनाया था। मै उनके माध्यम से आपको बुलाने के लिये आया हूँ। विद्याधरो ने मुझे आपको आमन्त्रित करने का दायित्व सौपा है। इसकी पृष्ठ-भूमि है। शिवकर नगर मे शिवकर राजा राज्य करता है। उसके कोई पुत्र नही है। पुत्र के लिए उसने अनेक प्रयत्न किये, किन्तु, सफलता नही मिली। विश्वदीप तपस्वी ने राजा की भक्ति से रीझ कर उसे एक फल प्रदान किया। तपस्वी ने उसे बताया कि यदि तू अपनी पत्नी के साथ बैठ कर इस फल को खायेगा तो, निश्चित ही तेरे पुत्र होगा। राजा ने मूर्खता का परिचय दिया। उस फल को राजा-रानी दोनों को मिलकर खाना था, राजा ने अकेले ही खा लिया। कुछ दिनो बाद राजा के उदर में भयकर पीड़ा होने लगी। वैद्यो ने निदान किया कि राजा के उदर मे तो गर्भ है। गर्भ की वृद्धि होने लगी। राजा असमजस में पड़ गया। उसे बहुत लज्जा का अनुभव हुआ। वह धवल गृह मे ही रहने लगा। नागरिको से मिलना-जुलना सब बन्द कर दिया। यह असभावित बात विद्युत् वेग की

तरह सारे शहर में फैल गई। सबके मुख पर एक ही चर्चा थी, राजा अब असमय ही काल-कवलित हो जायेगा।

अविचारित काय का परिणाम भी दु खद ही होता है। सातवे महोने राजा के पेट मे पीडा होने लगी। असमाधि मे ही उसका समय व्यतीत होने लगा। प्राण कण्ठों में आ गये। सभी विद्याधर एकत्र हुए। राजा की कष्ट-मुक्ति के लिये उन्होंने विशेषत विमषण किया। एक विद्याधर ने सुझाव दिया—इस वेदना का निवारण तब हो सकेगा, जब धरणेन्द्र का स्मरण किया जायेगा। यह सभी को उचित लगा। किन्तु दूसरे विद्याधर ने विप्रतिपत्ति उठाई। धरणेन्द्र की आराधना करेगा कौन ? राजा तो वेदना से आकुल-व्याकुल हो रहा है। एक क्षण भी उसे चैन नही है। राजा शिवशकर के भाई ने इसका एक उचित समाधान खोज निकाला। उसने कहा—"भाई के स्थान पर आराधना मैं करूगा। यह सुझाव सभी को उपयुक्त लगा। सभी ने उसे अविलम्ब साधना करने के लिए कहा। शुभ दिन और शुभ वेला में आराधना का प्रारम्भ किया गया। सातवे दिन धरणेन्द्र ने प्रत्यक्षत दर्शन दिये। शिवशकर के अनुज की बाछे खिल उठी। उसने तत्काल

निवेदन किया—"मैने विशेष प्रयोजन से आपका स्मरण किया है। मेरे भाई वेदना से व्याकुल हो रहे है। आप उन्हे कष्ट-मुक्त करे।"

मत्र और औषधि से असभावित कार्य भी सभावित हो जाते है। धरणेन्द्र का प्रत्यक्ष होना, असभव कार्य था, किन्तु, राजा के अनुज के मत्र-जाप से वह संभव हो गया। धरणेन्द्र भगवान् पार्श्वनाथ के मन्दिर मे गया। वहाँ से उसने प्रतिमा का स्नात्र-जल ग्रहण किया और लाकर उसे दिया। उसे कहा—यह पानी अपने अग्रज को पिलाओ, वेदना शान्त हो जाएगी। धरणेन्द्र अदृश्य हो गया।

पानी ने चामत्कारिक कार्य किया। उदर-वेदना शान्त हो गई। साढे आठ महीने बाद राजा के पेट मे पुन- व्यथा जागृत हुई। उस समय भी धरणेन्द्र की आराधना की गई। धरणेन्द्र ने वही स्नात्र-जल लाकर दिया। वेदना शान्त हो गई। राजा ने सुखपूर्वक प्रसव किया। चन्द्र की कान्ति के समान पुत्र का जन्म हुआ। राजा की बहुत दिनो की साध पूरी हो गई। किन्तु, उसकी मृत्यु भी उसी समय हो गई। धरणेन्द्र ने पुत्र को राज-सिंहासन पर बिठाया। उसका नाम रखा गया, धरणेन्द्र चूड़ामणि। उस कुमार के लिए ही धरणेन्द्र ने यह पाताल

पुरी बसायी। इस अग्नि-कुण्ड मे होते हुए वहाँ जाने का मार्ग है।

नगर-निर्माण के समय अन्यान्य सभी आवश्यक बातों की ओर भी धरणेन्द्र का ध्यान गया। जनता की उपासना के लिए व सब विघ्नों के शमन के लिए भगवान् पार्श्वनाथ का एक स्वर्ण-मन्दिर भी उसने बनाया। सभी विद्याधरो को धरणेन्द्र ने आज्ञा दी, सोलह वर्ष से अधिक आयु का कोई भी विद्याधर चार पर्व-तिथियो मे भगवान की प्रतिमा के दर्शन किये बिना भोजन नही कर सकेगा। यदि कोई करेगा, तो वह विद्या से भ्रष्ट हो जाएगा तथा कोढी हो जाएगा। राजा धरणेन्द्र चूडामणि के पास जो चन्द्रकान्त मणि का सिंहासन है, वह भी धरणेन्द्र द्वारा ही दिया गया है। आज अष्टमी का दिन है, अत विद्याधर वहाँ एकत्र होकर स्नात्र, नृत्य, गान आदि कर रहे है।

सारा इतिवृत्त तो अम्बड के सामने आ गया, पर, उसे यहा क्यो बुलाया गया, यह रहस्य अभी तक आवृत्त ही था। उसने प्रश्न किया तो राजा हंस ने कहा—एक बार पर्वतिथि के दिन राजा धरणेन्द्र चूडामणि ने भगवान् की प्रतिमा को बिना नमस्कार किये भोजन कर लिया। उस दिन से राजा

विद्या-भ्रष्ट हो गया और साथ ही भयकर कुष्ठ रोग से भी पीड़ित हो गया। धरणेन्द्र का पुन स्मरण किया गया। धरणेन्द्र ने दर्शन तो दिये, किन्तु, वे रोष में थे। उन्होने कहा—"मेरी आज्ञा का उल्लघन किया गया। उसी का दुष्परिणाम तू भोग रहा है। मेरे लिए अब किसी प्रकार की सहायता करना सम्भव नही है।" धरणेन्द्र अदृश्य हो गये। रानी ने राजा की कष्ट-मुक्ति के लिए विशेष तप का अनुष्ठान आरम्भ किया। चारों ही प्रकार के आहार का प्रत्याख्यान कर वह धरणेन्द्र के जाप मे लीन बैठी है। आज इक्कीस दिन बीत गये। उसके प्राण भी कण्ठो मे आ गये है। धरणेन्द्र का रोष कुछ-कुछ शान्त हुआ। उसने रानी को स्वप्न मे दर्शन दिये। साथ ही उन्होने राजा के जीवन की सुरक्षा का एक उपाय बताया. सौपारक पुर के निकट देव ब्रह्म नामक वाटिका है। अम्वड नामक एक सिद्ध पुरुप उस वाटिका मे आया है। वह फल तोडने के लिए एक वृक्ष की ओर हाथ बढायेगा। तुम उसे यहाँ ले आओ। वह राजा को कष्ट-मुक्त कर सकेगा। आपको यहाँ आमन्त्रित करने का मुख्य हेतु यही है।

राजा हंस के साथ अग्नि-कुण्ड से होता हुआ अम्वड़ लक्ष्मीपुर पहुंचा। अम्वड ने धरणेन्द्र चूड़ामणि

को कुष्ठ रोग से पीडित देखा। उसने उसके द्वारा भगवान् पाश्वनाथ व धरणेन्द्र की पूजा कराई। दान-पुण्य आदि भी कराये। जल को अभिमन्त्रित कर पिलाया। राजा नीरोग हो गया। नगर मे इस उपलक्ष्य मे महोत्सव किया गया। पटरानी ने अम्बड का बहुत सत्कार किया। धरणेन्द्र चूडामणि ने अपनी पुत्री मदनमजरी का विशेष आडम्बर से अम्बड के साथ विवाह किया। हस्तमोचन के अवसर पर हाथी, घोडे आदि व प्रचुर धन दिया गया। अम्बड वहाँ कुछ दिन ठहरा और विद्याधरों से उसने कई विद्याएँ भी सीखी।

मदनमजरी को साथ लेकर अम्बड पुन सौपारक नगर आया। उसने वहाँ भी कुछ चमत्कार दिखलाये। जनता बहुत प्रभावित हुई, किन्तु, जिस कार्य के लिये वह आया था, वह अब तक अधूरा ही था। राज-भवन मे उसका प्रवेश नही हो सका था। अम्बड का मन उसी मे सलग्न था।

व्यक्ति को जब सफलता मिलने को होती है, तब साधन-सामग्री भी उसी प्रकार जुट जाती है। वसन्त ऋतु का आगमन हुआ। राजा और नागरिक वसन्त के सौन्दर्य से आप्लावित होने के लिए उद्यान में आए। राजकुमारी सुरसुन्दरी भी आई। अम्बड भी वहाँ आया।

अवसर देख कर उसने राजकुमारी पर मोहिनी विद्या का प्रयोग किया । अम्वड ने योगी का रूप बना लिया । वह सुरसुन्दरी के पास आया । उसे देखकर राजकुमारी मुग्ध हो गई । आशीर्वाद देकर योगी उसके आगे बैठ गया । राजकुमारी मुग्ध भाव से उसकी ओर एक टक देखने लगी । योगी ने बग, कलिग आदि देशो की रस-पूर्ण नाना बाते आरम्भ की । बात-चीत के दौरान राख को अभिमन्त्रित कर राजकुमारी को दिया । राजकुमारी ने वह राख अपने मस्तक पर लगा ली । योगी क्षण-एक वहाँ ठहरा और वहां से चल दिया ।

राजकुमारी की सहेलियाँ इस पहेली को समझ न पाई । उन्होने राजा से सारी घटना सुनाई । राजा रोष मे भर आया । उसने आक्रोष के साथ कहा—"वह कौन धूर्त है, जो मेरी कन्या को भी ठगता है । यदि मेरे सकोप नेत्र उस पर जा टिके तो वह कौनसे पाताल मे अपना मुह छुपायेगा ।" राजा ने सुभटो की ओर देखा । सुभटो ने तत्काल ही अपने आयुध सम्भाल कर योगी का पीछा किया । अम्बड ने सुभटों पर भी मोहिनी विद्या का प्रयोग किया । वे भी सभी नतमस्तक होकर योगी के पास आकर बैठ गये । राजा ने अपना सेनापति भेजा । अम्बड़ ने उसे दो हाथ दिखलाये ।

राजकुमारी योगी को देखते ही मुग्ध हो उठी।

अपना भंयकर रूप वनाकर सेनापति का सामना किया। सेनापति टिक न सका। वह भाग खडा हुआ। राजा को सारा व्यतिकर सुनाया गया। सेना के साथ राजा स्वय चढ आया। दोनो ओर से भयकर युद्ध छिड गया। राजा और अम्वड ने वाणो की वर्षा आरम्भ कर दी। किन्तु, विद्या के प्रभाव से अम्वड के एक भी वाण नही लगा। राजा ने सोचा, निश्चित ही यह कोई सिद्ध पुरुष है। मुझे क्या करना चाहिए ?

केवल चिन्ता करने वाला व्यक्ति धोखा खा जाता है। अम्वड ने स्तम्भन विद्या का प्रयोग किया। राजा आदि का स्पन्दन भी अवरुद्ध हो गया। अम्वड ने अवसर का लाभ उठाया। राजा के मुकुट से बड़ी चातुरी और शीघ्रता से उसने वस्त्र उठा लिया। योगिनी द्वारा दिया गया आदेश पूर्ण हो गया। किन्तु, राजा आदि सभी व्यक्ति स्तम्भित ही थे। राजकुमारी सुरसुन्दरी ने आकर उन्हे मुक्त करने को प्रार्थना की। अम्वड ने उन्हे मुक्त कर दिया। राजा ने सुरसुन्दरी का विवाह अम्वड के साथ किया। अम्बड अपने परिवार के साथ रथनूपुर आया। गोरखयोगिनी से उसने भेट की। मुकुट का वस्त्र उसके समक्ष प्रस्तुत किया। अम्बड़ ने निवेदन किया—"माताजी ! मैने आपके अनुग्रह से सातों ही

आदेश पूर्ण कर दिये है।" योगिनी ने भी स्मित हास्य के साथ कहा—"तो तू भी सोच, तेरा अभाव भरा या नही ?" अम्वड का मस्तक श्रद्धा से योगिनी के चरणों में झुक गया। उसने तृप्ति का अनुभव किया। योगिनी ने उसे प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। अम्वड अपने घर लौट आया।

❀ ❀ ❀

अन्तिम जीवन

निर्धनता मनुष्य की प्रगति में इतनी बड़ी बाधा नहीं है, जितनी बाधा पौरुष व सूझबूझ का अभाव होती है। केवल सम्पन्नता में भी वह प्रगति सम्भव नहीं है, जो एक साहसी व्यक्ति कर सकता है। सुयोग्य व्यक्ति का मार्ग-दर्शन भी सफलता की दूरी को पाटता है। अम्बड निर्धन था। उस पर अपने अभिभावकों की भी छाया नहीं थी। किसी पारिवारिक व आत्मीय का भी सहयोग नहीं था, फिर भी उसने जीवन में वह प्रगति की, जिसकी कल्पना भी अशक्य जैसी लगती है। उसमें निमित्त बना था, उसका अपना भाग्य, पौरुष, सूझबूझ व उनसे भी विशेष गोरखयोगिनी का महत्व-पूर्ण मार्ग-दर्शन। जिस अम्बड़ के पास कुछ भी नहीं था, उसने भारतवर्ष का बड़ा राज्य प्राप्त किया। अपार धन-वैभव का वह स्वामी बना, बत्तीस स्त्रियों के साथ उसका विवाह हुआ। अलौकिक विद्याओं की उसे उपलब्धि हुई। वीर अम्बड़ के नाम से उसकी

ख्याति हुई ।

कुरुवक ने अपनी बात को अब दूसरा मोड दिया। उसने कहा, जिस वीर पुरुष की गाथा आपको मैंने सुनाई, वे और कोई नही स्वनाम धन्य मेरे पिता अम्बड ही थे। उपकारी के प्रति कृतज्ञता के भाव उनमें विशेष रूप से थे अत प्रतिदिन तीनो समय वे योगिनी के चरणो मे उपस्थित होते थे। योगिनी ने प्रसन्न होकर उनका दूसरा नाम विद्यासिद्ध भी रखा। मेरी माता का नाम चन्द्रावती है।

योगिनी की मेरे पिताजी पर विशेष कृपा थी। वह समय-समय पर नाना सूचनाए व अद्भुत वस्तुए उन्हें प्रदान करती रहती थीं। जब मैं आठ वर्ष का हुआ, उस समय की भी एक घटना है। मेरे पिताजी एक बार योगिनी के पास गये। उसने प्रसन्नतापूर्वक अपनी ध्यान कुण्डलिका के नीचे गडा हुआ राजा हरिश्चन्द्र का धन-भण्डार उन्हे दिखाया। अग्निवेताल उसका सरक्षक था। वह वेताल योगिनी के सान्निध्य मे उन पर प्रसन्न हुआ। उसने वह पूरा भण्डार पिताजी को दे दिया। पिताजी ने भी अग्निवेताल का सम्मान किया। धरणेन्द्र चूडामणि द्वारा दिया गया रत्नमय सिंहासन उन्होंने अग्निवेताल को अर्पित किया। वह

योगिनी पिताजी के समय-समय पर नाना सूचनाएं व
अद्‌भुत वस्तुएं प्रदान करती रहती थी।

पुण्य भी उसी भण्डार मे रख दिया गया। भाण्डागार मुद्रित हो गया। राजन्! यह सब मैने अपने पिताजी के मुख से सुना है। इसमे कुछ भी अन्यथा व कुछ भी अतिशयोक्ति नही है।

योग और वियोग का द्वन्द्व चला और चल रहा है। जिस गोरखयोगिनी के पुण्य-प्रभाव से पिताजी को सफलता प्राप्त हुई थी, वह स्वर्ग सिधार गई। योगिनी के वियोग से पिताजी अत्यन्त दु खित हुए। उनका मन उचट गया था। एक दिन वे अपनी बत्तीस रानियो के साथ उद्यान मे यात्रा के लिए गये। पुण्य-योग से वहाँ उनका केशी गणधर से साक्षात्कार हुआ। पिताजी ने घोडे मे उनर कर उन्हें नमस्कार किया। केशी गणधर ने धर्मोपदेश दिया। पिताजी ने प्रश्न किया—"भगवन्! जन धम उपकारक व शुभ है, पर, क्या वह शिव धम के तुल्य है?"

केशी गणधर ने उत्तर दिया—"अधूरा ज्ञान किसी विपय का निर्णायक नही होता। कुए का मेढक समुद्र की असीमता को कैसे जान सकता है? राजन्! तू ने केवल शिव धर्म का ही अनुशीलन किया है। जैन-शासन के बारे मे उतना परिचित नही है। जब उसे जानेगा, तेरा प्रश्न स्वयं समाहित हो जायेगा।"

अम्बड का मस्तक श्रद्धा से झुक गया। उसने जैन-शासन के बारे में विस्तार से जानना चाहा। साथ ही प्रार्थना की, कितना सुन्दर हो, यह स्वर्णिम अवसर मुझे अपने आवास पर ही मिले। केशी गणधर ने वह प्रार्थना स्वीकार की। वे हमारे आवास पर पधारे। पिताजी ने विशेष भक्ति प्रदर्शित की। गणधर के मुख से प्रतिदिन धर्म-देशना सुनकर वे प्रबुद्ध हुए और सम्यक्त्व रत्न प्राप्त किया। क्रमश श्रावक के बारह व्रत धारण किये। श्रावक-पर्याय का निरतिचार पालन करते हुए वे रह रहे थे।

केशी गणधर ने पिताजो को यह भी बताया कि भगवान् श्री महावीर भी जनता को प्रतिबोध देते हुए विचर रहे हैं। पिताजी इस सवाद से पुलकित हो उठे। भगवान् के दर्शनों के लिए उनका मन अधीर हो उठा। भगवान् श्री महावीर का शुभागमन उन्हीं दिनो विशाला मे हुआ था। वे वहा आये। भगवान् को वन्दन-नमस्कार किया और पर्युपासना करने लगे। भगवान् ने भी देशना दी। पिताजी की श्रद्धा और दृढ हुई। उन्होने एक प्रश्न किया—"भन्ते ! मै ससार से कब पार पाऊँगा?" भगवान् ने उत्तर दिया—"अम्बड़! भावी उत्सर्पिणी मे तू देवतीर्थङ्कृत नामक बाईसवें

दक्षिण दिशा के द्वार पर पहुँचा। वहां उसने शिव का रूप बनाया। हजारों नागरिकों ने शिव के दर्शन किये। सुलसा वहां भी नहीं आई। तीसरे दिन पश्चिम दिशा के द्वार पर अम्बड़ ने विष्णु का रूप बनाया। नागरिकों ने अपना अहोभाग्य माना। विष्णु के दर्शनों से कोई भी वंचित नहीं रहा होगा। पर, सुलसा तो वहां भी नहीं पहुँची।

अम्बड़ की तीनों योजनाएँ विफल हो गई। उसने निश्चय किया—सुलसा दृढ़ धार्मिका है। इसे अन्य रूपों से नहीं ठगा जा सकता। सम्भव है, तीर्थंकर का रूप देखकर वह चली आए। उत्तर दिशा के द्वार पर उसने इन्द्रजाल से समवसरण की विकुर्वणा की। अष्ट महाप्रातिहार्य से युक्त चतुर्मुख तीर्थंकर का रूप धारण कर वह देशना देने लगा। शहर में यह बात फैल गई, यहाँ पच्चीसवें तीर्थंकर प्रकट हुए हैं। सुलसा के पास भी यह सवाद पहुचा। लोगों ने उससे कहा—"ब्रह्मा, शिव व विष्णु के दर्शनों से तो कृतार्थ न हो सकी, पर, पच्चीसवें तीर्थंकर के दर्शन तो कर ले।" सुनते ही सुलसा ने कहा—"यह सब ढोंग है। पच्चीसवें तीर्थंकर कभी नहीं हो सकते। जनता को ठगने के लिए यह कोई षड्यन्त्र रचा गया है। मैं तो वहाँ कभी नहीं जाऊंगी।"

अम्वड की चौथी योजना भी विफल हो गई ।

अम्वड मूलरूप मे मुलसा के घर आया । अम्वड को अपना एक सार्धमिक मान कर सुलसा ने उसका स्वागत किया। अम्वड ने रहस्यो का उद्घाटन करते हुए कहा—"ये उपक्रम मैंने तेरी सम्यक्त्व-परीक्षा के लिए ही किये थे । तू विचलित नही हुई । धर्म मे तेरी दृढ आस्था देखकर मैं प्रभावित हुआ हूँ । अम्वड ने भगवान् के वाक्य भी उसे सुनाये और कहा—"भगवान् के वाक्य सचमुच ही यथाथ है ?"

अम्वड अपने घर लौट आया । बहुत वर्षो तक उसने श्रावक-धम का पालन किया । अपनी विद्याओ के बल से उसने जैन शासन की विशेष प्रभावना की । तीर्थकर नाम-कम के अजन मे विशेष रूप से योगभूत होने वाले बीस स्थानो की सम्यक् आराधना की । विरक्त-भाव में रहने लगा । कुछ समय वाद राज्य-भार मुझे सौप दिया । अन्तिम समय मे अनशन किया और समाधि-पूवक मृत्यु पाकर देवलोक मे गये । पति के विरह से वत्तीस रानियो ने भी अनशन किया और व्यन्तर योनि में उत्पन्न हुइ । पति के प्रति उनका विशेष अनुराग था, अत वे सभी भण्डार में रखे गये सिंहासन पर पुतलियों के रूप मे रह रही है ।

कुरुवक ने अपनी आत्म-कथा आरम्भ की। पाप-कर्म के योग से मेरा सारा ही राज्य शत्रुओं ने हस्तगत कर लिया है। मैं निर्धन हो गया हूं। जीवन-यापन का मेरे पास कोई साधन नहीं रहा। मैंने धन-भण्डार को निकालने का निर्णय किया। मैं ध्यान-कुण्डलिका के समीप गया। ज्यों ही मैंने उसे खोलने का प्रयत्न किया, मेरी माता चन्द्रावती ने मुझे प्रत्यक्षत दर्शन दिये। आश्चर्यान्वित होकर मैंने पूछा—"माताजी! आप कहाँ से?" माताजी ने उत्तर दिया—"हम सभी रानियां मर कर व्यन्तर योनि में उत्पन्न हुई हैं। पुनलिया होकर तेरे पिता के दिव्य सिंहासन की सुरक्षा कर रही हैं। तू इसके लिए उपक्रम मत कर। तेरे भाग्य में लक्ष्मी नहीं है, अतएव मैं तुझे निवारित करती हूँ। तू अपने घर चला जा।"

माता अदृश्य हो गई। मैंने सोचा, यदि भाग्य मुझे साथ नहीं देता है, तो प्रयत्न करना भी व्यर्थ है। मैंने सोचा, किसी भाग्यशाली पुरुष को साथ लेकर यदि प्रयत्न किया जाये तो, सम्भवत सफलता मिल सकती है। इस उद्देश्य से मैं आपके पास आया हूं। आपके भाग्य से सम्भवत मेरा भी भाग्य चमक उठे।

धन-भण्डार का नाम सुनते ही राजा विक्रमसिंह के

मुँह में पानी भर आया। भण्डार को हस्तगत करने के लिए वह कुरुबक के साथ उस ध्यान-कुण्डलिका के पास आया। ज्यो ही कुण्डलिका को खोलने का उपक्रम आरम्भ किया, भीतर से एक ध्वनि आई—"राजन्! यह उपक्रम मत करो। तुम्हें यह भाण्डागार प्राप्त नही होगा। इस भाण्डागार का उपभोक्ता तो केवल उज्जयिनी-नरेश विक्रमादित्य ही होगा।"

विक्रमसिंह उस ध्वनि से बहुत चमत्कृत हुआ। उसने अपना प्रयत्न रोक दिया। वह नगर लौट आया। राजा ने कुरुबक की आजीविका का प्रबन्ध कर दिया। कुछ समय बाद राजा विक्रमसिंह दिवगत हो गया। कुरुबक भी काल-कवलित हो गया।

समय अपने परिवेश मे सभी को समेटता चलता है और साथ ही नये-नये उन्मेष भी प्रस्तुत करता जाता है। बहुत सारे राजा उसमें सिमट गये। कुछ समय बाद राजा विक्रमादित्य उन्मेष मे आया। वह महासाहसिक था। उसने अपने पराक्रम से अग्निवेताल को वश में किया? अग्निवेताल ने विक्रमादित्य को अम्बड का सिंहासन व स्वर्णपुरुष प्रदान किया। राजा हरिश्चन्द्र के भण्डार की भी सभी वस्तुए उसने उसे प्रदान की। वेताल के सहयोग से विक्रमादित्य ने सारी पृथ्वी का

ऋण-मुक्त किया और अपना सवत्सर प्रवर्तित किया। उस सिंहासन पर बैठ कर उसने बहुत समय तक राज्य किया, धर्म की आराधना की और स्वर्ग को अलंकृत किया।

❀ ❀ ❀